वैदिक गीता

भाष्यकार एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं संयोजन : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक :

दो शब्द

मेरी गीता से अच्छा कोई ग्रंथ नहीं है ।
सारे जहाँ में ऐसा कोई रत्न नहीं है ।।
हमें नाज़ है गीता पे झूठी लगन नहीं है ।
कहीं और ऐसी शिक्षा दिल का अमन नहीं है ।।

–स्वामी गीतानंद (वीरजी अम्बाला वाले)

गीता की सूरत में श्याम नज़र आते हैं ।
उसके हरेक श्लोक में उनके पैग़ाम नज़र आते हैं ।।

–स्वामी ज्ञानानंद (गीता मनीषी)

वस्तुतः गीता महर्षि वेदव्यास कृत विश्व के विशालतम महाकाव्य महाभारत के भीष्मपर्व के 25वें अध्याय से 42वें अध्याय तक 18 अध्याय का एक स्वतंत्र ग्रंथ है । यह योगिराज श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से मुखरित हुई है । इसकी महिमा अगाध एवं असीम है । यह एक महान् ग्रंथ है । इसमें वेदों, उपनिषदों, महाभारत का सार है । इसी कारण स्वामी शिवानंद ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "Bliss Divine" में सत्य ही लिखा है–

The Gita is the cream of the Vedas. It is the quintessence of the Upanishads. It is the crest jewel of the Mahabharata. –P. 193

गीता वेदों का सार है यह उपनिषदों का सारांश तथा महाभारत की शिखामणि है ।

इसका मुख्य सार यह है कि आत्मा, अमर व अजर है और भौतिक शरीर क्षणभंगुर एवं नाशवान् है । परन्तु मृत्यु अनिवार्य एवं अटल है । फिर किसी भी व्यक्ति को व्यर्थ की चिंता नहीं करनी चाहिये और किसी से भी व्यर्थ में नहीं डरना चाहिये । सारे कर्म, कर्मफल की इच्छा का परित्याग करके निष्काम भाव से करते हुए प्रभुशरण में स्वयं को समर्पित कर देना चाहिये । महाभारतकार ने इसके सार को अधोलिखित श्लोक में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्र संग्रहैः ।
या स्वयं पदमनामस्य मुखपद्माद्विनिः सृता ।।

–महाभारत भीष्मपर्व 431

गीता का ही भलीभाँति श्रवण, कीर्तन, पठन-पाठन, मनन, धारण करना चाहिये। अन्य बहुत से शास्त्रों के संग्रह करने की क्या आवश्यकता है? क्योंकि वह स्वयं पद्मनाम श्रीकृष्ण के मुखारविंद से मुखरित हुई है।

इसके विपरीत वर्तमान गीता में वेदनिन्दा परक एवं वेदों के महत्व को कम करने वाले श्लोक हैं। परन्तु यह निश्चय ही प्रक्षेपकारों की प्रस्तुति है। अतः वेद निन्दा के नाम पर गीता का विरोध करना उचित नहीं है। डॉ० सम्पूर्णानंद ने वेदों और गीता के संबंध स्पष्ट करते हुए लिखा है –

गीता निश्चय ही एक महती कृति है किन्तु यह हमारे लिये स्वतः प्रमाण नहीं अथवा धर्म की सबसे बड़ी पुस्तक नहीं है। यह पद वेदों को ही प्राप्त है।

गीता में वर्णित ऐसी ही सार्वभौम सच्चाइयां वेदानुकूल होने से हमारे लिए मान्य एवं प्रामाणिक हैं। प्रक्षेपकारों की लीला से गीता में जो वेदविरुद्ध बातें हैं, सार्वभौम सत्य के विरुद्ध हैं, साम्प्रदायिक हैं, पक्षपातपूर्ण है, वह सर्वथा अग्राह्य एवं अमान्य हैं। गीता के वर्तमान रूप को पूर्णतः वेदानुकूल नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि गीता जैसे लोकप्रिय ग्रंथ को भी आलोचना के तीव्र प्रहारों का सामना करना पड़ा है। गीता में समय-समय पर प्रक्षेप हुये हैं। यह मानने से किसी भी व्यक्ति को आपत्ति नहीं हो सकती।

महाभारत में भी प्रक्षिप्तभाग की कोई कमी नहीं है। महर्षि वेदव्यास ने सबसे पहले 3100 ई० पूर्व गीता की रचना की थी। इसके पश्चात् महाभारत की रचना की। जब महर्षि वेदव्यास कृष्णद्वैपायन ने महाभारत की रचना की थी तो उस समय इसका नाम जय था तथा इसमें 4400 श्लोक थे और इसके पश्चात् उसके शिष्यों ने और श्लोक जोड़ दिये और इसके श्लोकों की संख्या 10,000 हो गई और इसका नाम भारत हो गया। महाराजा विक्रमादित्य के समय 25,000 श्लोक हो गए थे और महाराजा भोज की आधी आयु तक 30,000 हो गये। महाराज भोज ने इस ग्रंथ को बढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, परन्तु उनके पश्चात् स्वार्थी तत्त्व इस ग्रंथ में वेद विरुद्ध बातों को जोड़ते रहे। आधुनिक महाभारत में श्लोक संख्या 1,07,390 है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत का अधिकतर भाग प्रक्षिप्त है क्योंकि गीता भी महाभारत का एक भाग है। अतः गीता में भी प्रक्षिप्त भाग का होना स्वाभाविक ही है। इस अवस्था में मूल श्लोकों का चयन कर पाना असम्भव है। इन प्रक्षिप्त श्लोकों के कारण ही अन्य सम्प्रदायों के लोग गीता पर टीका-टिप्पणी करते हैं जिस कारण गीता की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लग जाते हैं। इसके अतिरिक्त भागवत वाले ने तो गीता का जनाजा ही निकाल

कर रख दिया है जिससे योगेश्वर कृष्ण जी की आलोचनाएं भी होने लगीं हैं।

इसी प्रसंग में कर्णवास निवासी पं० भूमित्र शर्मा लिखते हैं कि वह स्वामी दयानंद की सेवा में प्रतिदिन गंगातीर घाट पर जाकर संध्या पढ़ा करते थे। एक दिन स्वामी दयानंद जी के पास कुछ श्रोता बैठे हुए थे। उसी समय ठाकुर गोपालसिंह के कारिंदा लाला केसरी लाल कायस्थ ने प्रश्न किया कि महाराज मैं गीता का पाठ किया करता हूँ यह कैसी पुस्तक है? तब स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया कि गीता में सम्प्रदायी लोगों ने बहुत श्लोक मिला दिये हैं। इसमें 7, 10, 11 और 12 अध्याय तो पूर्णतः प्रक्षिप्त हैं और अन्य अध्यायों में किसी में 10 किसी में 5 श्लोक प्रक्षिप्त हैं उनको छोड़कर शेष गीता शुद्ध है।

गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को लगभग 300 बार 'मैं', 'मेरा', 'मुझे' आदि सर्वनामों का प्रयोग योगयुक्त अवस्था में अपने लिये न करके परमात्मत्व का वर्णन किया। इसका यह अर्थ नहीं कि वे स्वयं परमात्मा या परमात्मा के अवतार थे जैसे वैष्णव भाई मानते हैं। परन्तु वे महापुरुष थे। ऐसे श्लोक प्रक्षिप्त हैं। वास्तव में श्रीकृष्ण ने योगावस्था में मैं शब्द का प्रयोग किया था जिसका सीधा सम्बन्ध परमात्म तत्व से है। इसका एक कारण और भी हैं। जहाँ तक एक ओर प्रथम पुरुष का प्रयोग करते हुए कृष्ण स्वयं को परमात्मा बताते हैं वहाँ कहीं-कहीं उसके लिये अन्य पुरुष का प्रयोग करते हुए स्वयं से पृथक् परमात्मा की सत्ता को भी स्वीकार करते हैं। इस वदतोव्याघात दोष (कथन का वह दोष जिस में कोई बात कहकर फिर उसके विरुद्ध बात कही गई हो) से गीता को बचाने का सर्वोत्तम उपाय दिया जाए, जहाँ श्रीकृष्ण स्वयं को परमात्मा घोषित करते हैं। कारण यह है कि दोनों प्रकार से उल्लेख साथ-साथ नहीं चल सकता। जैसे –

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशे ऽर्जुन तिष्ठति। –18/61

परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में विराजमान है।

परन्तु इसके 5 श्लोक पश्चात् श्रीकृष्ण ने अपनी शरण में आने का आदेश दिया। जैसे–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। –18/66

तू सब अधर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा।

यहाँ तक कि स्वामी मंगलानंद पुरी कृत ''प्राचीन भगवद् गीता'' जोकि बाली द्वीप से प्राप्त हुई है, में केवल 70 श्लोक हैं। वस्तुतः गीता चौथे अध्याय

के छठे श्लोक पर ही समाप्त हो जाती है। इसमें पिष्टपेषण (Repetition) की मात्रा अत्यधिक है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग का बार-बार वर्णन है। पिष्टपेषण का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। –2/23

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता एवं वायु सुखा नहीं सकती।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। –2/24

आत्मा को छेदा नहीं जा सकता, जलाया नहीं जा सकता, गीला नहीं किया जा सकता, सुखाया नहीं जा सकता। यह नित्य है, सबके अन्दर व्याप्त है, स्थिर है, अचल है, सनातन है।

वस्तुतः गीता में क्या है? यह यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के दूसरे मंत्र की व्याख्या है। जरा देखिए–

कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजीविच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। –यजु० 40/2

इस संसार में कर्मों के करते हुए भी मनुष्य सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करें। यही एक साधन है जिसके द्वारा तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त न होंगे। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

स्थितप्रज्ञ गीता का आदर्श पुरुष है। वह प्रेम सबसे करता है परन्तु वह मोह किसी से भी नहीं करता। जैसे फूलों में सुगंध, चंद्रमा में शीतलता, दीपक में रोशनी होती है उसी प्रकार स्थितप्रज्ञ में प्रेम ही प्रेम होता है। वस्तुतः मोह में व्यक्ति संकीर्ण बनकर रह जाता है और इस प्रकार मोह व्यक्ति को अंधा बना देता है। संसार की कोई वस्तु दुःख का कारण नहीं है। न धन, न पद, न पुत्र और सम्पत्ति परन्तु जब व्यक्ति में मैं और मेरा की भावना आ जाती है वहीं आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। जब व्यक्ति में तू और तेरी की भावना आ जाती है तो आसक्ति भाग जाती है। जहाँ पर ज्ञान होता है वहाँ पर मोह नहीं होता। गीता केवल मोह की निवृत्ति के लिये कही गई है। मोह की निवृति प्रभु कृपा से ही होगी मोह कृपा साध्य है। स्थितप्रज्ञ अथवा जीवनमुक्त रागद्वेष से रहित होकर जीवन व्यतीत करता है। जैसे एक सरकारी कर्मचारी सरकारी निवास में रहता हुआ भी उससे राग नहीं रखता और इसी प्रकार एक जज

अपराधी को सजा देता हुआ भी उससे कोई द्वेष नहीं करता है ।

स्थितप्रज्ञ अथवा जीवनमुक्त का भाव है कि वह व्यक्ति जिसके जीवन में दुःख सहन एवं स्वीकृत करने की क्षमता है । वह दुःखों को हँसकर भोगता है परंतु साधारण व्यक्ति रोकर भोगता है । व्यक्ति प्रकृति का पुत्र तो है न कि पति, जैसे हृदय की सम्पत्ति भावना है न कि कामना । अभाव की अनुभूति से ही कामना की उत्पत्ति होती है । परंतु जब हम किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये भगवत् भावना से काम करते हैं तो कामना उत्पन्न नहीं होती ।

वह प्रतिबन्धित (Conditional) न होकर आध्यात्मिक (Spiritual) होता है और इसी कारण संसार के सुख-दुःख, उत्थान-पतन, जीवन-मरण, यश-अपयश, हानि-लाभ में समान होता है । वह समझता है कि जो आनन्द परमात्मानुभूति में है वह विषयासक्ति में नहीं है । उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में होती हैं और उसका मन भी स्वतः उसके अधीन होता है । वह प्रत्येक कार्य भगवद्भावना से अपना कर्त्तव्य समझकर और ममता एवं अहंकार से रहित होकर करता है और उसे परमशांति मिलती है जोकि मानव जीवन का मुख्योद्देश्य है क्योंकि स्थितप्रज्ञ या जीवनमुक्त या ब्रह्मस्थिति की प्राप्ति करना ही गीता का संदेश मानवमात्र के लिये है । स्थितप्रज्ञ के विषय में स्वामी शिवानंद जी ने अपनी पुस्तक "Bliss Divine** में लिखा है –

> **The Jivanmukta is a power house of spiritual energy. He radiates his spiritual currents to the different corners of the world. Sit before him. Your doubts will be cleared by themselves. You will feel a peculiar thrill of joy and peace in his presence.** –P. 292

जीवनमुक्त आध्यात्मिक शक्ति का भंडार होता है। वह अपनी आध्यात्मिक तरंगों से संसार के विभिन्न भागों को जगाता है । उसके समक्ष बैठने मात्र से स्वतः ही आपकी शंकाओं का समाधान हो जायेगा । उसकी उपस्थिति में आप एक विशेष प्रकार की प्रसन्न्ता एवं शान्ति अनुभव करेंगे ।

युद्धभूमि में 700 श्लोकों की सम्पूर्ण गीता श्रीकृष्ण के मुखारबिंद द्वारा मुखरित करना असम्भव प्रतीत होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि गीता के 2/39 तक के श्लोकों का ही उपदेश युद्धभूमि में ही हुआ होगा और हो सकता है इसके उपरांत का प्रायः सब का सब महर्षि व्यास ने महाभारत ग्रंथ की रचना करते समय लिखा हो । युद्धभूमि पर दिये उपदेश को अधिक स्पष्ट तथा उपकारी बनाने के लिये ऐसा किया गया होगा । युद्ध के 30 वर्ष पश्चात् महाभारत ग्रंथ लिखा जाना आरम्भ हुआ और महाराजा जन्मेजय के सर्पयज्ञ तक यह लिखा जाता रहा । उस समय वैशम्पायन ने यज्ञ के पश्चात् इसका

प्रवचन किया था । प्रवचन करते हुये कई श्लोक एवं कथानक के कई अंश वैशम्पायन के नाम से हैं । सर्पयज्ञ के समय महर्षि व्यास जीवित थे और ऐसा सम्भव है कि वैशम्पायन द्वारा कही गई कथा के वे अंश महर्षि व्यास की अनुमति से मूल ग्रंथ में मिला दिये गये हो ।

गीता के प्रत्येक अध्याय के शीर्षक में योग शब्द के दर्शन होते हैं । वस्तुतः गीता में 84 बार योग शब्द का प्रयोग हुआ है । इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग और भक्तियोग की मधुर मंदाकिनी प्रवाहित हो रही है । परंतु कर्म, ज्ञान भक्ति आदि को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता । साधक अपनी रुचि के अनुसार परमात्मा की स्तुति, उपासना और प्रार्थना के लिये कोई भी मार्ग अपना सकता है । इसमें 7 बार ओम् शब्द का प्रयोग हुआ है ।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' आत्मवत् सर्वभूतेषु और **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना से गीता ओतप्रोत है अर्थात् 'संसार के सभी व्यक्ति सुखी हों', 'सब को अपने समान समझिये' और 'यह सारा संसार एक परिवार की भाँति है' की उज्ज्वल एवं उदार भावना इस ग्रंथ में देखने को मिलती है ।

अतः यह एक विश्व विख्यात ग्रंथ है । संसार में बाइबल का अनुवाद लगभग 2000 से भी अधिक भाषाओं में हो चुका है । वह इस कारण हुआ कि अंग्रेजों के पास अपार धन एवं सत्ता थी । परंतु इसके विपरीत गीता का अनुवाद संसार की लगभग 700 भाषाओं में इसके गुणों एवं महता के कारण हुआ । इसका सर्वप्रथम भाष्य आदि शंकराचार्य जी ने किया था । अतः स्वामी योगानंद जी अपनी पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता में लिखते हैं–

> **The Bhagwat Gita is the most beloved scripture of India, a scripture of scriptures. It is the Hindus Holy Testament or Bible the one book that all masters depend upon at a supreme source of scriptures authority.** –P. XVII

श्रीमद्भगवद्गीता भारत के धार्मिक ग्रंथों में सर्वप्रिय है यह धार्मिक ग्रंथों में एक धार्मिक ग्रंथ है । यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे सभी विद्वान् धार्मिक महत्व के सर्वोत्तम स्रोत के रूप में स्वीकार करते हैं । इसी प्रकार गीता की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए जयदयाल गोयन्दका लिखते हैं–

गीता का ज्ञान अथाह समुद्र है । इसके अंदर ज्ञान का अनन्त भण्डार भरा पड़ा

है। इसका तत्व समझाने में बड़े-बड़े दिग्विजयी विद्वान् और तत्त्वालोचक महात्माओं की वाणी भी कुण्ठित हो जाती है, क्योंकि इसका पूर्ण रहस्य भगवान् श्रीकृष्ण ही जानते हैं, उनके बाद कहीं इसके संकलनकर्ता व्यास जी और श्रोता अर्जुन का नम्बर आता है। ऐसी अगाध रहस्यमयी गीता का आशय और महत्व समझाना मेरे जैसे मनुष्यों के लिये ठीक वैसा ही है जैसा एक साधारण पक्षी का अनन्त आकाश का पता लगाने के लिये प्रयत्न करना।

—श्रीमद्भगवगीता (तत्त्वविवेचनी, पृ० 10)

अंततः इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गीता को राष्ट्रीय ग्रंथ घोषित कर देना चाहिये जैसे कि प्रयाग उच्च न्यायालय पहले ही ऐसा कर चुका है। जैसे प्रयाग उच्च न्यायालय के न्यायमूति श्री शम्भू नाथ श्रीवास्तव ने 10.9.2007 के एक ऐतिहासिक निर्णय द्वारा गीता को राष्ट्रीय धर्मशास्त्र घोषित करने का आह्वान किया था।

प्रस्तुत ग्रंथ में 18 अध्यायों के श्लोकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—

1. प्रत्येक अध्याय का शुभारम्भ उसके सार से किया गया है ताकि साधारण पाठक को भी इस ग्रंथ के गूढ़ रहस्यों को समझने में सुविधा हो सके।
2. प्रस्तुत ग्रंथ का मूल श्लोक लिखा गया है।
3. प्रत्येक श्लोक का उर्दू पद्यानुवाद देवनागरी लिपि में किया गया है ताकि पाठकों को पढ़ने में रुचि बढे। वस्तुतः यह उर्दू पद्यानुवाद ख़्वाजादिल मुहम्मद साहिब (एम.ए.) द्वारा लिखित दिल की गीता से उद्धृत किया गया है।
4. इसके उपरांत मूल श्लोकों और उर्दू पद्यानुवाद के श्लोकों के कठिन शब्दार्थ भी लिख दिये गये हैं ताकि पाठकगण जो संस्कृत एवं उर्दू भाषा से अभिज्ञय हैं इन्हें आसानी से समझ सकें।
5. अंत में श्लोकों का भावार्थ किया गया है।
6. ग्रंथ के अंत में 25 प्रश्नोत्तरी लिख दी गई हैं ताकि ग्रंथ रुचिपूर्वक और आकर्षक बन सके। हम देखते हैं कि आज हमारे समाज में बच्चों की रुचि पश्चिमी संस्कृति की ओर जा

रही है और वे भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ हो रहे हैं। अतः वे इसका अध्ययन करें ताकि भारतीय संस्कृति व संस्कारों में रुचि बढ़े।

7. यह ग्रंथ महाभारत का भाग है इसमें प्रक्षिप्त भाग अधिक है। अतः इसका वैदिकीकरण करने का प्रयास भी किया गया है।

प्रस्तुतः पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लालचन्द चौहान, नरेन्द्र आहूजा 'विवेक', सत्यपाल मोदी, रोशनलाल अग्रवाल, जयकिशन, नरेश बंसल आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। विशेषतः लालचन्द चौहान जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान प्रदान किया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं।

जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु अल्पज्ञ व अपूर्ण होने के कारण फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा और अनुरोध भी करता हूँ कि इसमें जो त्रुटि रह गई है उसे निम्नलिखित पते पर लिख कर अवश्य भेजें ताकि भविष्य में उसको सुधारा जा सके।

धर्म पाल कपूर

(धर्मपाल कपूर)

तिथि : 9-2-2017

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

समाज सुधार के कार्यों में विश्व के बहुत से विद्वान्, विचारक एवं सुधारक अपने-अपने ढंग से सृष्टि के आदि से कार्यरत हैं परन्तु प्रत्येक का कार्य क्षेत्र और कार्य करने का ढंग अलग-अलग है। कोई अधर्मियों का विनाश कर उनको मौत के घाट उतार कर करता है। कोई अपने ज्ञान का उपदेश करके अधर्म न करने की नसीयत देता है। कोई प्रचार सामग्री के माध्यम से सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म का ज्ञान बाँटता है, कोई पुस्तकों के माध्यम से लोगों का सत्य मार्ग दर्शन करता हैं श्री धर्मपाल कपूर जी पुस्तक निःशुल्क वितरण करके पुण्य का कार्य कर रहे हैं। गीता का भी इनके द्वारा बड़े कठिन परिश्रम के साथ उर्दू और हिन्दी में पद्य, गद्य दोनों में भाष्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया हैं संस्कृत के व उर्दू के शब्दों का अर्थ भी सरलता से गीतारहस्य को समझने के लिये दिया है। गीता एक विश्वविख्यात् ग्रंथ है। संसार में सभी देशों के विद्वानों ने समान रूप से इसका आदर किया। किसी ने आर्थिक दृष्टि से तो किसी ने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से।

प्रत्येक का हर वस्तु का अलग-अलग उपयोग होता है। उदाहरणतः बन्दूक शत्रुओं से रक्षा के लिये निर्माण कर्ता ने बनाई। कभी भी यदि कोई शत्रु उस पर आक्रमण करे तो वह उसकी सहायता से अपनी रक्षा कर सके, परन्तु कुछ लोग उसका अपने सम्बन्धी व अपनी स्वयं की ही मृत्यु के लिये प्रयोग करते हैं। हर व्यक्ति का अपने सोचने, कार्य करने का अपने स्वभाव के अनुसार तरीका है। गीता का आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने, चरित्र निर्माण करने, परमात्मा के वास्तविक सत्यस्वरूप को जानने के लिये प्रयोग किया जाये तो यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। गीता में मिलावट करके अर्थात् वास्तविक श्लोकों में पाखण्डियों द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये वेद शास्त्रों की मान्यता के विरुद्ध श्लोक जोड़ देने से लोग भ्रमित हो गये। श्री कृष्ण जी का जो चरित्रनिर्माण और धर्म की रक्षा और अधर्म का विनाश करने का उपदेश करने का उद्देश्य था, वह भ्रमित हो गया और लोग उन श्लोकों के पढ़ने से ईश्वर के स्थान पर श्रीकृष्ण जी को ईश्वर का अवतार मान कर पूजने लगे और बिना विचारे लोग देखा देखी इस परम्परा से जुड़ते गये। धर्म के स्थान पर लोग अधर्म की ओर झुकते चले गये और मानने लगे कि सत्य से

कभी जीवन यात्रा नहीं चल सकती। परन्तु यह विचारधारा मानव को असत्य की बातों को मान लेने पर विनाश की ओर ले गई। आज उसका परिणाम है जो देश में चारों तरफ त्राहि-त्राहि मची हुई है। इतनी आपराधिक घटनाएं नित्य घट रही हैं, परन्तु उनको देख कर भी कोई उनसे कुछ सीखना नहीं चाहता। गीता के विषय में मेरा अपना विचार इस प्रकार से है—

गीता में चरित्रनिर्माण का है पूर्ण ज्ञान,
कर्म कुशलता का श्रीकृष्ण ने बतलाया विधान।
गीता में यदि पाखण्डियों ने मिलावट न की होती,
तो ईश्वर के स्थान पर श्रीकृष्ण की पूजा न होती।
ईश्वर की उपासना से ही मिलता है परम आनन्द,
पाखण्डियों ने अवतारवाद के बिठा रखे हैं छन्द।
गीता में ज्ञान है, विज्ञान है मोक्ष प्राप्ति का है विधान,
वेद सारे विश्व के लोगों का है ऐश्वर्य का संविधान।

—लाल चन्द चौहान

बहुत से लोग अपने ढंग से गीता का सार लिखते हैं, कोई लिखता है। क्या लाया था कया ले जायेगा? खाली हाथ आया था, खाली हाथ जायेगा। यह गीता का सार अविद्वान् का हो सकता है, विद्वान् का नहीं। क्योंकि मनुष्य अपने पूर्व जन्मों के संचित कर्मों को साथ लेकर आता है और उनको पूर्व जन्मों के कर्म फलों के अनुसार देह धारण कर (वह मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि हो सकती है) उन कर्मों का भोग भोगता है और भविष्य के लिए कर्म करता है। मनुष्य भोगता भी है और भविष्य के लिए कर्म भी करता है, परन्तु अन्य जीव केवल भोग भोगते हैं। कर्म ही मनुष्य का भाग्य का निर्माण करते हैं। यह मनुष्य के ऊपर निर्भर करता है कि उसकी आसक्ति धर्म कार्यों में है या पाप कर्मों में। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र और उसका फल भोगने में परतन्त्र है। फल देना ईश्वर के अधीन है।

अब गीता में श्रीकृष्ण जी ने जो उपदेश अर्जुन को कुरुक्षेत्र में दिया था, उसका वर्णन करते हैं। एक बात विद्वान् लोगों के लिए अत्यन्त विचारणीय है कि गीता जो हम वर्तमान में देख रहे हैं, इसमें 18 अध्याय हैं और 18 अध्यायों में श्रीकृष्ण जी द्वारा कर्मसिद्धान्त का उपदेश दिया गया हैं और योग साधना द्वारा ईश्वर के साक्षात्कार करने का उपाय बतलाया है। क्या यह

सम्भव है कि श्रीकृष्ण जी ने गीता में जितने श्लोक हैं, उनके द्वारा युद्ध क्षेत्र में अर्जुन को उपदेश दिया था। एक गीता में मैंने सुना कि केवल 18 अध्याय नहीं, केवल 18 श्लोक हैं जिनके द्वारा श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध क्षेत्र में उपदेश दिया था। यह बात सत्य प्रतीत होती है, परन्तु 18 अध्याय में श्लोकों का उपदेश युद्ध क्षेत्र में दिया जाना सम्भव नहीं है। गीता की जो मान्यता भारतवर्ष में है उससे सब परिचित हैं। न्यायालयों में गीता पर हाथ रख कर प्रतिज्ञा कराई जाती है कि ''जो भी कहूँगा सत्य कहूँगा और सत्य के अलावा कुछ नहीं कहूँगा।'' परन्तु फिर भी लोग असत्य के आदि होने के कारण बहुत सी बातें असत्य ही कहते हैं।

गीता का सार क्या है?

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेत् (यजु. 40/2)

इस संसार में कर्म करते हुए जीने की इच्छा करना अर्थात् बिना पुरुषार्थ किये जीने की इच्छा न कर।

ईशावस्यामिदं सर्व (यजु. 40/1)

वह परम पिता परमात्मा कण-कण में व्यापक है, उसकी व्यापकता के बग़ैर कोई स्थान नहीं है। जो योग साधना करते हैं, वह उसको प्राप्त कर लेते हैं। स्वकर्म विपरीत आचरणों से निरन्तर विरक्ति तथा अनुकूल आचरणों का निरन्तर अभ्यास होने से सिद्धि मिलती है।

राधा को कृष्ण जी के साथ जोड़ना, मेरे विचार से तो अपराध है। क्योंकि किसी भी नारी का अपमान करना अपराध ही तो है। वैसे राधा नाम की वास्तविकता और ही है जिसे गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया है। रास लीला का जो गीता में प्रसंग प्रस्तुत किया गया है, बड़ा ही शर्मनाक है, परन्तु निर्लज्जों का यह भक्ति भाव है। इस रास लीला की वास्तविकता को लोग नहीं जानते। गोपाल नारायण बड़ा ही बुद्धिमान था, उसने कंस की क्रूरता के विरोध में राधा नाम की एक कीर्तन मण्डली बनाई, जो प्रत्यक्ष में तो नाच गान कर आराधना करती थी, परन्तु वास्तव में कंस के विरुद्ध विद्रोह की तैयारी थी। बालक कृष्ण भी इस मण्डली में आते जाते थे, क्योंकि सयाण कृष्ण का माम था, माता यशोदा का रिश्ते में भाई था। यद्यपि कृष्ण की आयु छोटी थी परन्तु उसकी बुद्धि की विलक्षण प्रतिभा देख कर सयाण मरते समय इस मण्डली का नेतृत्व कृष्ण को सौंप गये। इस घटना की ब्रह्मवैवर्तपुराण में जो

दुर्दशा की गई है उसे पढ़ कर सिर लज्जा से झुक जाता है, इससे श्रीकृष्ण जी पर लोग चोरी, वस्त्र हरण, रास लीला जैसे लांछन लगाते हैं । महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि श्रीकृष्ण ने जन्म पर्यन्त कोई भी ऐसा कार्य किया हो जिससे उसके चरित्र पर दाग लगे, महाभारत में कहीं भी देखने को नहीं मिलता ।

लोग न तो गीता रहस्य को ही समझ पा रहे हैं, न ही श्रीकृष्ण जी को । वे वेदों के प्रकाण्ड पंडित थे, श्रीकृष्ण जी की विद्वता के कारण ही भीष्म पितामह उनका बड़ा आदर करते थे । चाहे वे कौरवों का पक्ष ले रहे थे । श्रीकृष्ण जी योगेश्वर थे और योग साधना से उन्होंने ईश्वर का साक्षात्कार किया था । योग से वे भूत और भविष्य का ध्यान रखते थे । उन्होंने कहीं भी स्वयं को ईश्वर का अवतार नहीं कहा । परन्तु उन्होंने स्वयं ईश्वर की उपासना करने का अर्जुन का उपदेश दिया । उनका कथन है, यदि तुम मेरे अनुयायी बनना चाहते हो तो काम, क्रोध, मोह, त्याग कर निःस्वार्थ भाव से कर्म करो । योग साधना से ही ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है ।

श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र के विषय में ज्ञान न होने पर गीतारहस्य को ठीक प्रकार से समझ पाना असम्भव है । जो श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व से अनभिज्ञ हैं, वह राधा-कृष्ण की रट लगा कर यह समझते हैं कि हम श्रीकृष्ण जी के बड़े भक्त हैं, जब कि वे भक्ति की परिभाषा को जानते ही नहीं । भक्ति वह जिसकी भावना ईश्वर को प्राप्त करने की हो । परमात्मा ही एक ऐसा उपास्य देव है जिसकी उपासना से मनुष्य में आत्मबल बढ़ता है और पाप कर्मों की निवृति होती है ।

श्री धर्मपाल कपूर जी के इस अथक परिश्रम की मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ और ईश्वर से लम्बी आयु एवं आरोग्यता की प्रार्थना करता हूँ ।

लालचन्द चौहान

से.नि. राज्य विकास अधिकारी,

591/12, सैक्टर 12,

पंचकूला (हरियाणा)

फोन : 0172-2563079

मोबाइल : 9814881501

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और इसका मूल्य सदुपयोग है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1	पहला अध्याय (अर्जुनविषादयोग)	1
2	दूसरा अध्याय (सांख्ययोग)	25
3	तीसरा अध्याय (कर्मयोग)	64
4	चौथा अध्याय (ज्ञानकर्मसंन्यासयोग)	88
5	पाँचवाँ अध्याय (कर्मसंन्यासयोग)	111
6	छठा अध्याय (आत्मसंयम योग)	128
7	सातवाँ अध्याय (ज्ञानविज्ञान योग)	155
8.	आठवाँ अध्याय (अक्षर ब्रह्मयोग)	172
9.	नौंवा अध्याय (राजविद्या राजगुह्ययोग)	189
10.	दसवाँ अध्याय (विभूति योग)	209
11.	ग्यारहवाँ अध्याय (विश्वरूपदर्शनयोग)	231
12.	बारहवाँ अध्याय (भक्तियोग)	263
13.	तेरहवाँ अध्याय (क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग)	275
14.	चौदहवां अध्याय (गुणत्रयविभागयोग)	295
15.	पंद्रहवाँ अध्याय (पुरुषोत्तमयोग)	310
16.	सोलहवाँ अध्याय (देवासुरसंपद्विभागयोग)	323
17.	सतारहवां अध्याय (श्रद्धामयविभागयोग)	337
18.	अठारहवाँ अध्याय (मोक्षसंन्यासयोग)	353
19.	गीता प्रश्नोत्तरी	395

पहला अध्याय

महाभारत के युद्ध के समय कौरवों तथा पांडवों की दोनों सेनाएं आमने-सामने खड़ी हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी हैं। वह अपने रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाकर खड़ा कर देते हैं। अर्जुन चारों ओर अपने बंधु-बांधवों को युद्ध के लिये तैयार देखकर मोह-जाल में फंस जाता है। वह अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है। वह श्रीकृष्ण से कह देता है कि मैं सांसारिक सुख एवं राज्य के लिये अपने संबंधियों का वध कदापि नहीं कर सकता क्योंकि मेरे शरीर में कम्पन एवं रोमांच हो रहा है और मेरा गाण्डीव धनुष भी मेरे हाथों से गिरे जा रहा है। इस प्रकार अर्जुन युद्ध के भयानक दृश्य को देखकर शोक (भूतवृति), मोह (वर्तमानवृति), भय (भविष्यवृति), चिन्ता (दुःख) और विषाद (खेद, खिन्नता) के सागर में डूब जाता है। इन विकारों को कोई सच्चा संत और गुणातीत ही उसके जीवन से दूर कर सकता है। अतः श्रीकृष्ण अर्जुन को मोह-माया में फंसा देखकर कर्त्तव्य का ज्ञान करवाते हैं।

1. **धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।**
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।

कुरुक्षेत्र की धर्मभूमि पे जब,
मिले पाण्डुओं से मेरे लाल सब।
लड़ाई का दिल में जमाये ख़्याल,
तो संजय बता उनका सब हाल-चाल।।

शब्दार्थ– धर्मक्षेत्रे–धर्म के क्षेत्र में, पुण्यभूमि में; कुरुक्षेत्रे– कुरुक्षेत्र के मैदान में; समवेताः–इकट्ठे हुए; युयुत्सवः–युद्ध करने की इच्छा वाले; मामकाः–मेरे लोग; पांडवाः–पाण्डु के पुत्र; च–और; एव–भी; किम्–क्या; अकुर्वत–किया; संजय–हे संजय।

भावार्थ– हे संजय! जब मेरे और पाण्डु के पुत्र युद्ध करने की इच्छा से कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि में एकत्रित हुए तब उन्होंने क्या किया?

2. **दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।**
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत्।।

महाराज! आई नज़र जिस घड़ी,
सफ़-ए आरा-सपह पाण्डवों की खड़ी।
गये राजा दुर्योधन उठकर शताब,
किया जा के अपने गुरु से खिताब।।

शब्दार्थ – दृष्ट्वा–देखकर; तु–लेकिन; पाण्डवानीकम्–पाण्डवों की सेना को; व्यूढम्–व्यूह रच कर खड़ी; दुर्योधनः–दुर्योधन; तदा–तब; आचार्यम्–द्रोणाचार्य को; उपसंगम्य–निकट पहुँचकर; राजा–राजा दुर्योधन; वचनम्–शब्द; अब्रवीत्–कहने लगा।
सफ़-ए आरा-सपाह–व्यूह-रचना में खड़ी सेना; शताब–जल्दी से; खिताब–संबोधन।

भावार्थ– संजय बोले– तब राजा दुर्योधन पाण्डवों की सेना को व्यूह रच कर खड़ी देखकर गुरु द्रोणाचार्य के निकट पहुँच कर उनसे कहने लगा।

3. **पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।**
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता।।

गुरु जी! ज़रा देखिये औज़-मौज़
सफ़-ए आरा है पाण्डु के बेटों की फ़ौज।
द्रौपद का पिसर उनका सरदार है
जो चेला तुम्हारा ही तर्रार है।

शब्दार्थ– पश्य–देख; एताम्–इस; पाण्डुपुत्राणाम्–पाण्डु के पुत्रों की; आचार्य–हे आचार्य द्रोण; महतीम्–बड़ी; चमूम्–सेना को; व्यूढाम्–व्यूह रचना में खड़ी; द्रुपदपुत्रेण–द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा; तव–तेरे; शिष्येण–शिष्य द्वारा; धीमता–बुद्धिमान् द्वारा।
सफ़-ए आरा–व्यूह रूप में खड़ी; तर्रार–बुद्धिमान्।

भावार्थ– हे आचार्य! पाण्डु पुत्रों की इस बड़ी सेना को देखिये जिसकी व्यूह रचना आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने की है।

4. अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।।

लड़ाई को निकले हैं ऐहल-ए-खदंग,
जो सब अर्जुन और भीम हैं वक्त-ए जंग।
विराट और युयुधान मरदानकार,
द्रुपद-सा बहादुर महारथ सवार।।

शब्दार्थ– अत्र–यहाँ; शूराः–शूरवीर; महेष्वासाः–बड़े-बड़े धनुर्धारी; भीमार्जुनसमाः–भीम तथा अर्जुन के समान; युधि–युद्ध में; युयुधान–सात्यकि का नाम है जो कृष्ण का सारथी था; विराटः–विराट राजा; च–और; द्रुपदः– राजा द्रुपद; महारथः– योद्धा।

ऐहल-ए खदंग–तीरों वाले; वक्त-ए जंग–युद्ध में; मरदान कार–शूरवीर।

भावार्थ– इस सेना में बड़े-बड़े धनुषों वाले तथा युद्ध व्यूह में भीम और अर्जुन के समान शूरवीर महाधनुर्धर सात्यकि, विराट और महाराज द्रुपद खड़े हैं।

5. धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नरपुंगवः।।

कहीं धृष्टकेतु कहीं चेकिताँ,
कहीं राजा काशी का शेर-ए-ज़माँ।
इधर कुन्तीभोज और पुरुजित उधर,
कहीं शैव्य सूरत-ए गाद-ए नर।।

शब्दार्थ –धृष्टकेतुः–चेदियों के राजा का नाम; चेकितानः–पाण्डवों के प्रसिद्ध योद्धा का नाम; काशिराजः–काशी का राजा; च–और; वीर्यवान्–वीर; पुरुजित्–राजा का नाम; कुन्तिभोज–कुन्ती का धर्मपिता, च–और; शैव्य–शिवि जाति का राजा; च–और; नरपुंगव–मनुष्यों में श्रेष्ठ।

शेर-ए जमाँ–बड़ा पराक्रमी; गाद-ए नर– मनुष्यों में श्रेष्ठ।

भावार्थ– इनके अतिरिक्त धृष्टकेतु, चेकितान, बलवान् काशीराज, पुरुजित, कुन्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैव्य जैसे महान् शक्तिशाली योद्धा भी हैं।

6. **युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।**
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ।।

युधामन्यु जैसा कहीं शूरवीर,
कहीं उत्तमौजा बली बेनज़ीर ।
कहीं है बहादुर सुभद्रा का शेर,
पिसर द्रौपदी के महारथ दिलेर ।।

शब्दार्थ– युधामन्युः–एक राजा का नाम; च–और; विक्रान्तः–पराक्रमी; उत्तमौजाः–राजा का नाम; च–और; वीर्यवान्–वीर; सौभद्रः–सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु; द्रौपदेयाः–द्रौपदी के सब पुत्र; च–और, सर्वे–सब; एव–ही; महारथाः–बड़े भारी रथ का मालिक ।

बेनज़ीर–अद्वितीय; पिसर–पुत्र; दिलेर–शूरवीर ।

भावार्थ– इसी प्रकार पराक्रमी युधामन्यु, बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदी के पाँचों पुत्र – ये सभी महारथी हैं ।

7. **अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।**
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ।।

मुकद्दस गुरु साहिब-ए एहतराम,
जहाँ के दो जन्मों में आली मकाम ।
सुनो अब हमारे हैं सरदार कौन,
हमारी सपाह के हैं सालार कौन ।।

शब्दार्थ– अस्माकम्–हमारे; तु–तो; विशिष्टाः–विशेष गुणों के कारण; मुख्य–मुख्य; ये–जो; तान्–उन्हें; निबोध–जानिये; द्विजोत्तम–ब्राह्मणों में श्रेष्ठ; नायकाः–नेता; मम–मेरी; सैन्यस्य–सेना के; संज्ञार्थम्–जानकारी के लिए; तान्–उन्हें; ब्रवीमि–कहता हूँ; ते–आपको ।

मुकद्दस–पवित्र; साहिब-ए एहतराम–पूजनीय; दो जन्मों–द्विज; सपाह–सेना; सालार–नायक ।

भावार्थ –हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! अब हमारी सेना के जो मुख्य-मुख्य नायक हैं उनके नाम भी आप जान लीजिये । आपकी जानकारी के लिये मैं उनके नाम लेकर आपको बताता हूँ ।

8. **भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।**
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च।।

गुरुजी इधर सबसे अव्वल जनाब,
तो फिर भीष्म और कर्ण से लाजवाब।
कृपा फ़तहमंद अश्वत्थामा नर,
विकर्ण और बली सोमदत्त का पिसर।।

शब्दार्थ— भवान् — आप; भीष्मः — भीष्म; च — और; कर्णः — कर्ण, कृपः— कृपाचार्य; समितिंजयः — युद्ध में जीतने वाले; अश्वत्थामा— द्रोणाचार्य का पुत्र; विकर्ण—धृतराष्ट्र का पुत्र, सौमदत्तिः— सोमदत्त का पुत्र; तथा—भी; एव—ही।

अव्वल—प्रथम; जनाब—श्रीमान्‌जी; लाजवाब—अद्वितीय; फ़तहमंद—संग्राम को जीतने वाला; पिसर—बेटा।

भावार्थ— हमारी सेना में आप हैं, भीष्म हैं, कर्ण हैं, कृपाचार्य हैं, अश्वत्थामा हैं, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा आदि जो युद्ध में सदा विजयी रहे हैं।

9. **अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।**
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः।।

दिलावर इसी शान के बेशुमार,
जो मेरे लिये जाँ भी कर दें निसार।
सरापा-मुसल्ला उठाये खदंग,
इयाँ जिनपे सब जंग के रंग-ढंग।।

शब्दार्थ— अन्ये—दूसरे; बहवः—अनेक; शूराः—शूरवीर; मदर्थे—मेरे लिये; त्यक्तजीविताः—जीवन त्यागने वाले; नानाशस्त्रप्रहरणाः— भिन्न-भिन्न शस्त्रों के चलाने में निपुण; सर्वे—सब; युद्धविशारदाः—युद्ध में प्रवीण।

दिलावर—योद्धा; बेशुमार—अगणित; निसार—न्योछावर; सरापा-मुसल्ला—शस्त्रों से सजे-धजे; खदंग—अस्त्र-शस्त्र, इयाँ— प्रगट।

भावार्थ —इनके अतिरिक्त मेरे लिये अपने प्राण त्याग देने वाले बहुत से शूरवीर अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित और सब के सब युद्ध विद्या में निपुण हैं।

10. अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ।।

हमारी इधर फ़ौज है बेशुमार,
कमाँदार भीष्म-सा आली वकार ।
मुकाबिल में महदूद फ़ौज-ए ग़नीम
है सेनापति जिनके लश्कर का भीम ।।

शब्दार्थ – अपर्याप्तम्–अपरिमित या नाकाफ़ी; तद्–वह; अस्माकम्–हमारी; बलम्–सेना; भीष्माभिरक्षितम्–जिसकी रक्षा भीष्म कर रहे हैं; पर्याप्तम्–काफी; तु–तो; इदम्–यह; एतेषाम्– इनकी; बलम्–सेना; भीमाभिरक्षितम्–जिसकी रक्षा भीम कर रहे हैं ।

आली–उत्तम पद वाले; 2. मुक़ाबिल–दूसरी ओर; महदूद–थोड़ी, फ़ौज-ए-ग़नीम–शत्रु की सेना; लश्कर–सेना ।

भावार्थ– इस प्रकार भीष्म पितामह द्वारा रक्षित हमारी यह सेना सब प्रकार से असीमित है जबकि भीम द्वारा रक्षित पाण्डवों की यह सेना बहुत सीमित है ।

11. अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवमस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ।।

जवानो! कतारों में बट जाइयो,
परे बांध कर रण में डट जाइयो ।
दिलेरो! सफ़ अपनी भर दो सभी,
न भीष्म पर आंच आये मर्दो कभी ।।

शब्दार्थ– अयनेषु–मोर्चों पर; च–और; सर्वेषु–सब; यथाभागम्–अपने-अपने भाग अनुसार; अवस्थिताः–ठहरे हुए; भीष्मम्–भीष्म को; एव–ही; अभिरक्षन्तु–सुरक्षित करें; भवन्तः–आप; सर्वे–सब लोग; एव हि–निश्चय ही ।

परे–ठिकाने; सफ़–पक्तियाँ ।

भावार्थ– इसलिये सब मोर्चों पर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आप सभी निःसन्देह भीष्म पितामह को पूरी-पूरी सहायता दें ।

12. तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ।।

यह सुनकर गरजने लगा मिस्ल-ए शेर
वो भीष्म-पितामह वो पीर-ए दिलेर ।
वो शंख अपना जंगी बजाने लगा,
तेरे लाल का दिल बढ़ाने लगा ।।

शब्दार्थ– तस्य–उसके; संजनयन्–उत्पन्न करते हुए; हर्षं–हर्ष; कुरुवृद्धः–कौरवों में वृद्ध; पितामहः–भीष्म पितामह; सिंहनादम्–सिंह के नाद के समान; विनद्य–गर्जकर; उच्चैः–उच्च स्वर से; शंखम्–शंख को; दध्मौ–बजाया; प्रतापवान्–प्रतापी ।
मिस्ल-ए शेर–सिंह के समान; पीर-ए दिलेर–वृद्ध प्रतापी ।

भावार्थ– यह सब देखकर दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए कौरवों में वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्म ने सिंह की दहाड़ के समान शंख बजाया ।

13. ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।।

यकायक उठा फ़ौज से शोर-ओ गुल,
जो नाकूस चिल्लाये खड़के दुहुल ।
गरजने धड़कने लगे ढोल दफ़,
लगी गोमुखें चीखने हर तरफ़ ।।

शब्दार्थ– ततः–उसके बाद; शंखाः–शंख; च–और; भेर्यः–भेरियाँ; पणवानकगोमुखाः– ढोल तथा नगाड़े; सहसा–एक साथ; एव–ही; अभ्यहन्यन्त–बजे; सः–वह; शब्दः–आवाज़; तुमुलः–बड़ा भयंकर; अभवत्–हुआ ।
यकायक–अचानक; नाकूस–शंख; दुहुल–नगारे; ढफ–मृदंग ।

भावार्थ –इसके पश्चात् शंख और नगारे तथा ढोल, मृदंग और नरसिंघे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे । उनका वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ ।

14. **ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।**
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः।।

खड़ा था वहाँ एक रथ शानदार,
जुते जिसमें बर्राक सब राह-ओ वार।
थे माधो भी अर्जुन भी उसमें खड़े,
वो शंख आसमानी बजाने लगे।।

शब्दार्थ – ततः–तब; श्वेतैः–सफ़ेद; हयैः–घोड़ों से; युक्ते–जुड़े हुए; महति–विशाल; स्यन्दने–रथ में; स्थितौ–बैठे हुए; माधवः–श्रीकृष्ण; पाण्डवः–अर्जुन; च–और; एव–ही; दिव्यौ–दिव्यगुण युक्त; शंखौ–शंख; प्रदध्मतुः–बजाये ।
बर्राक–सफ़ेद रंग; राह-ओ वार–घोड़े; आसमानी–दिव्य ।

भावार्थ– इसके पश्चात् सफेद घोड़ों से युक्त उत्तम रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुन ने भी अलौकिक शंख बजाये ।

15. **पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः।**
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः।।

हृषीकेश का पांचजन्य पे ज़ोर,
इधर देवदत्त पर था अर्जुन का शोर।
उधर भीम-सा मर्द-ए खूंखार था,
जो पौण्ड्र पे चिंघाड़ता था खड़ा।।

शब्दार्थ– पांचजन्यम्–पाँचजन्य नामक शंख को; हृषीकेशः–श्रीकृष्ण; देवदत्तम्–देवदत्त नामक शंख को, धनंजयः–अर्जुन; पौण्ड्रम्–पौण्ड्र नामक शंख को; दध्मौ–बजाया; महाशंख–महाशंख को; भीमकर्मा–भयंकर कर्म वाले; वृकोदरः– बड़े उदर वाले भीम ने ।
पांचजन्य–कृष्ण के दिव्य शंख का नाम; देवदत्त–अर्जुन के दिव्य शंख का नाम; पौण्ड्र–भीम के दिव्य शख का नाम; मर्द-ए खूंखार–भयंकर कर्मो वाले ।

भावार्थ – श्रीकृष्ण ने पांचजन्य नामक, अर्जुन ने देवदत्त नामक और भयानक कर्मवाले भीमसेन ने पौण्ड्र नामक महाशंख बजाया ।

16. **अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।**
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ।।

महीपत युधिष्ठिर वो कुन्ती का लाल,
'विजय' पर दिखाता था अपना कमाल।
दिखाते नकुल और सहदेव जोश,
लिये एक 'मणिपुष्पक' और इक 'सुघोष।

शब्दार्थ – अनन्तविजयम्–अनन्तविजय अर्थात् जो सदा जीतनेवाला है, यह नाम है जिस शंख का; च– और; सुघोषमणिपुष्पकौ–सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंखों को।

भावार्थ – कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्प नामक शंख बजाये।

17. **काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।**
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः।।

वो काशी का राजा धनुषधार भी,
शिखण्डी महारथ-सा जर्‌रार भी।
विराट और बली धृष्टधुम्न सभी,
कवि सात्यकि जो न हारा कभी।।

शब्दार्थ – काश्यः–काशी का राजा; च–और; परमेष्वासः–श्रेष्ठ धनुषवाला; च–और; महारथः–महारथी; च–और; सात्यकिः–सात्यकि; अपराजितः–पराजित न होने वाला।
जर्‌रार–शूरवीर; कवि–शक्तिशाली।

भावार्थ – श्रेष्ठ धनुषधारी काशीराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि ने अपने-अपने शंख बजाये।

18. **द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।**
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक्।।

द्रुपद और सुभद्रा का बलवन्त लाल,
पिसर द्रौपदी के सभी बाकमाल।
महाराज हर-सू दिखाते थे जोश,
बजाते थे शंख अपने बासिद खरोश।।

शब्दार्थ – द्रौपदेयाः–द्रौपदी के पुत्र; च–और; सर्वशः–इन सबने; पृथिवीपते–हे पृथ्वी के पति धृतराष्ट्र !; सौभद्रः–सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु; च–और; महाबाहुः–बड़ी भुजाओं वाला; शंखान्–शंखों को; दध्मु–बजाये।

बाकमाल–प्रवीण; हर-सू–चारों तरफ; बासिद ख़रोश– बड़े उत्साहपूर्वक।

भावार्थ – राजा द्रुपद और द्रौपदी के पांचों पुत्र और बड़ी भुजा वाले सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु इन सभी ने, हे राजन् सब ओर से अलग-अलग शंख बजाये।

19. **स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।**
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलोऽभ्यनुनादयन्।।

वो हंगामा बरपा हुआ आलमाँ,
हुए शोर से पुरज़मी आसमाँ।
हरासाँ[4] थे धृतराष्ट्र के पिसर,
लगे फटने सीनों में कल्ब-ओ जिगर।।

शब्दार्थ– सः–वह; घोष–शब्द; धार्तराष्ट्राणाम्–धृतराष्ट के पुत्रों के; हृदयानि–हृदयों को; व्यदारयत्–विदीर्ण कर दिया; नभः–आकाशः; च–और; पृथिवीम्–पृथिवी को; च–और; एव–भी; तुमुलः–भयानक; वि अनुनादयन्–नाद अर्थात् शब्दायमान करते हुए।

हंगामा–भारी शोर; बरपा–हुआ; आलमाँ–ब्रह्माण्ड; हरासाँ–भयभीत; पिसर–बेटे।

भावार्थ – उन भयानक शब्द ने आकाश और पृथ्वी को भी गुंजाते हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदयों को विदीर्ण कर दिया।

20. अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः।।

कि इतने में पाण्डु का बेटा उठा,
उड़ाता फरेरा[1] हनुमान का।
कमाँ उसने ले ली कि तेरे पिसर,
खड़े थे चलाने को तीर-ओ तबर।।

शब्दार्थ– अथ–इसके पश्चात्; व्यवस्थितान्–अपने-अपने स्थान पर खड़े हुओं को; दृष्ट्वा–देखकर; धार्तराष्ट्रान्–धृतराष्ट्र के पुत्रों को; कपिध्वजः–जिसके झण्डे पर हनुमान् का चिह्न था; प्रवृत्ते–अभी तैयारी ही थी; शस्त्रसम्पाते–शस्त्रों के चलने की; धनुः–धनुष; उद्यम्य–उठाकर; पाण्डवः–अर्जुन।

फरेरा–ध्वजा; तीर-ओ तबर–शस्त्र।

भावार्थ –हे राजन्! इसके बाद कपिध्वज अर्जुन ने मोर्चा बाँधकर डटे हुए धृतराष्ट्र-सम्बन्धियों को देखकर, उस शस्त्र चलने की तैयारी के समय अपना धनुष उठाकर।

21. हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।।

महीपत! वो बोला हृषीकेश से,
कि ऐ लाफ़ना! रथ बढ़ा दीजिये।
चलें वस्त में देखने औज-मौज,
इधर अपनी फ़ौज और उधर उनकी फ़ौज।।

शब्दार्थ– हृषीकेशम्–श्रीकृष्ण को; तदा–तब; वाक्यम्–वचन; इदम्–यह; आह–बोला; महीपते–हे राजन्!; सेनयोः–सेनाओं के; उभयोः–दोनों; मध्ये–बीच में; रथम्–रथको; स्थापय–खड़ा करो; मे–मेरे; अच्युत–हे अडिग रहने वाले कृष्ण।

महीपत–राजन; लाफ़ना–श्रीकृष्ण; वस्त–मध्य; औज-मौज–चहल-पहल।

भावार्थ –हृषीकेश श्रीकृष्ण से यह वचन कहा – हे अच्युत! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में आप खड़ा कीजिये।

22. **यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।**
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ।।

मैं देखूँ ज़रा वो जवाँ कौन हैं,
ज़री कौन हैं? पहलवाँ कौन हैं?
लड़ाई को आये हैं जो बे-दरंग,
मुझे आज दरपेश हैं जिनसे जंग ।।

शब्दार्थ – यावत्–जब तक; एतान्–इनको; निरीक्षे–अच्छी तरह देख लूँ; अहम्–मैं; योद्धु–युद्ध करने के लिये; कामान्–इच्छा वाले; अवस्थितान्–खड़े हुए; कैः–किन के साथ; मया–मुझे; सह–साथ; योद्धव्यम्–युद्ध करना है; अस्मिन्–इस; रण–युद्धरूपी; समुद्यमे–उद्यम में ।

जवाँ–योद्धा; ज़री–शूरवीर; पहलवाँ–सैनिक, बे-दरंग–निडर; दरपेश–सामना ।

भावार्थ – मैं युद्ध क्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इन विपक्षी योद्धाओं को भली प्रकार जांच लूँ कि इस युद्ध में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना योग्य है ।

23. **योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।**
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।।

नज़र उनकी सूरत पे कर लूँ ज़रा,
जो आये हैं मर्द-ए नबुर्द आज़मा ।
यह मकसद है जिनका कि हो उनसे शाद,
वो धृतराष्ट्र का पिसर कुज निहाद ।।

शब्दार्थ – योत्स्यमानान्–युद्ध करने वालों को; अवेक्षे–देखूँगा; अहम्–मैं; ये–जो-जो; एते–ये लोग; अत्र–यहाँ; समागताः–आये हैं; धार्तराष्ट्रस्य–धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन के; दुर्बुद्धेः–दुर्बुद्धि वाले; युद्धे–युद्ध में; प्रिय–भला; चिकीर्षवः–चाहने वाले ।

मर्द-ए नबुर्द–योद्धागण; मकसद–उद्देश्य; पिसर–बेटा; कुज–दुर्बुद्धि ।

भावार्थ – दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में हित चाहने वाले जो-जो ये राजा लोग इस सेना में आये हैं, इन युद्ध करने वालों को मैं देखूँ तो सही ।

24. एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्।।

गुडाकेश से जब हृषीकेश ने,
सुना यह तो रथ को बढ़ाने लगे।
था उस रथ का रुतबा रथों में बड़ा,
किया दोनों फ़ौजों में लाकर खड़ा।।

शब्दार्थ – एवम्–इस प्रकार; उक्तः–कहा गया; हृषीकेशः–श्रीकृष्ण; गुडाकेशेन–अर्जुन द्वारा; भारत–हे धृतराष्ट्र!; सेनयोः–दोनों सेनाओं के; उभयोः–दोनों के; स्थापयित्वा–खड़ा करके; रथोत्तमम्–उत्तम रथ को।

रुतबा–महत्त्व।

भावार्थ – संजय बोले! हे धृतराष्ट्र! अर्जुन द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में रथ को खड़ा कर दिया।

25. भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति।।

द्रोण और भीष्म डटे थे वहाँ,
जमे थे वहीं राजगान-ए जहाँ।
कहा–देख अर्जुन खड़े सफ़-ब-सफ़,
लड़ाई की ख़ातिर कुरु सर बकफ़।।

शब्दार्थ – भीष्मद्रोणप्रमुखतः–भीष्म और द्रोण के सामने; सर्वेषाम्–सबके; च–और; महीक्षिताम्–राजाओं के; उवाच–कहा; पार्थ–हे अर्जुन!; पश्च–देख; एतान्–इनको; समवेतान्–इकट्ठे हुओं को; कुरून्–कौरवों को; इति–इस प्रकार।

राजगार-ए–राजा लोग; सफ़-ब सफ़–कतारों में; सर बकफ़–सर हथेली पर रखे हुये।

भावार्थ – भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा सम्पूर्ण राजाओं के सामने उत्तम रथ को खड़ा करके इस प्रकार कहा – हे अर्जुन! युद्ध के लिये जुटे हुए इन कौरवों को देख।

26. तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।।

तब अर्जुन ने देखा खड़े हैं तमाम,
चचे, दादे, उस्ताद जी-एहतराम ।
कहीं बेटे, पोते, कहीं यार हैं,
बरादर हैं मामू हैं, ग़मख़्वार हैं ।।

शब्दार्थ – तत्र–वहाँ; अपश्चत्–देखा; स्थितान्–खड़े हुए; पार्थः–अर्जुन ने; पितॄन्–बुजुर्गों को; अथ–और; पितामहान्–पितामहों को; आचार्यान्–गुरुओं को; मातुलान्–मामों को; भ्रातॄन्–भाइयों को; पुत्रान्–पुत्रों को; पौत्रान्–पौत्रों को; सखीन्–मित्रों को ।

जी-एहतराम–आदरणीय; यार–मित्र; बरादर–भाई; ग़मख़्वार–हितैषी ।

भावार्थ – अर्जुन ने वहाँ पर दोनों ही सेनाओं में स्थित ताऊ-चाचों, दादों-परदादों, गुरुओं, मामाओं, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों तथा मित्रों को देखा ।

27. श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।।

ख़ुसर है कोई, कोई दिलबन्द है,
कि इक से लगा इक का प्योबन्द है ।
जिगर की जिगर से लड़ाई है आज,
कि लड़ने को भाई से भाई है आज ।।

शब्दार्थ – श्वशुरान्–द्रपुद आदि श्वसुरों को; सुहृदः–मित्र राजा लोगों को; च–भी; एव–ही; सेनयोः–सेनाओं में; उभयोः–दोनों; अपि–ही; तान्–उन्हें; समीक्ष्य–देखकर; सः–वह; कौन्तेयः–कुन्ती का पुत्र अर्जुन; सर्वान्–सबको; बन्धून्–बन्धुओं को; अवस्थितान्–खड़े हुओं को ।

दिलबंद–बंधु; प्योबन्द–जोड़ ।

भावार्थ – ससुरों और सुहृदयों तथा सभी बन्धुओं और हितैषियों को दोनों सेनाओं में खड़े हुओं को कुन्ती पुत्र अर्जुन ने देखा ।

28. कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।।

हुआ दिल को अर्जुन के रंज-ओ मलाल,
कहा रहम-ओ रिक्कत से होकर निढाल।
महाराज! यह क्या है दरपेश आज,
कि लड़ने को है ख़्वेश-से-ख़्वेश आज।।

शब्दार्थ– कृपया–करुणा से; परया–परम; आविष्टः–अभरा हुआ; विषीदन्–उदास होकर; इदम्–यह; अब्रवीत्–बोला; दृष्ट्वा–देखकर; इमम्–इस; स्वजन–अपने लोगों को; युयुत्सम्–युद्ध के लिये व्याकुल को; समुपस्थितम्–सामने खड़े हुए को।

रंज-ओ मलाल–विषाद; रहम-ओ रिक्कत–दया और मोह; दरपेश–उपस्थित; ख़्वेश-से-ख़्वेश–अपने से अपना।

भावार्थ –स्व जनों को युद्ध के लिये तत्पर देख कर अत्यंत करुणा से युक्त दुःखी होकर शोक करते हुए वह श्रीकृष्ण से बोला।

29. सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।

बदन में नहीं मेरे ताब-ओ तबाँ,
दहन खुश्क है सूखती है ज़बाँ।
लगी है मुझे कपकपी थरथरी,
मेरे रौंगटे भी खड़े हैं सभी।।

शब्दार्थ –सीदन्ति–शिथिल हुए जाते हैं; मम–मेरे; गात्राणि–अंग; मुखम्–मुख; च–भी; परिशुष्यति–सूखा जा रहा है; वेपथुः–कम्पकपी; च–और; शरीरे–शरीर में; मे–मेरे; रोमहर्षः–रोमांच; च–और; जायते–उत्पन्न होता है।

ताब-ओ तबाँ–शक्ति, दहन–मुख।

भावार्थ –मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्पन और रोमांच हो रहा है।

30. **गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।**
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।

चली हाथ से मेरे गाण्डीव अब,
बदन जल रहा है मेरा सब-का-सब।
यह लो पाओं भी लड़खड़ाने लगे,
मेरे सर को चक्कर से आने लगे।।

शब्दार्थ – गांडीवम्–गांडीव धनुष; स्रंसते–फिसलता है; हस्तात्–हाथ से; त्वक्–त्वचा; च–और; एव–ही; परिदह्यते–जल रही है; न–नहीं; च–और; शक्नोमि–समर्थ हूँ; अवस्थातुम्–खड़ा रहने के लिये; भ्रमति–चकराता है; इव–मानों; च–और; मे–मेरा ।

भावार्थ– हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है । मैं खड़ा रहने में भी असमर्थ हो रहा हूँ ।

31. **निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।**
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे।।

महाराज केशव! मैं अब क्या कहूँ!,
कि आसार बद हैं बुरे हैं शगूँ।
यह कार-ए ज़बूँ करके क्या फ़ायदा,
अज़ीजो का खूँ करके क्या फ़ायदा।।

शब्दार्थ – निमित्तानि–लक्षण; च–और; पश्यामि–देखता हूँ; विपरीतानि–उल्टे; च–और; श्रेयः–भलाई; अनुपश्यामि–देखता हूँ; हत्वा–मार कर; स्वजनम्–अपने लोगों को; आहवे–युद्ध में ।

आसार–चिह्न; बुरे हैं शगुँ–अपशकुन; कार-ए ज़बूँ–दुष्कर्म; अज़ीजों–प्यारों ।

भावार्थ – हे कृष्ण ! मैं लक्षणों को भी विपरीत ही देख रहा हूँ क्षत्रिय कल्याण के लिये युद्ध करते हैं परन्तु इस युद्ध में स्वजनसमुदाय को मारकर कल्याण भी नहीं दीखता ।

32. न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।।

मुझे ख़्वाइश फताह-ओ नुसरत नहीं,
मुझे शौक ऐश-ओ हकूमत नहीं।
कि गोविन्द! ताज-ए शही हेच है ,
खुशी हेच है, ज़िन्दगी हेच है।।

शब्दार्थ– काङ्क्षे–चाहता हूँ; विजयम्–जीत को; च–और; राज्यम्–राज्य को; सुखानि–सुखों को; च–और; राज्यम्–राज्य को; सुखानि–सुखों को; च–और; किं–क्या है; नः–हमें; राज्येन–राज्य से; गोविन्द–हे कृष्ण!; किं–क्या है; भोगैः–भोगों से; जीवितेन–जीवन से; वा–अथवा।

फ़ताह-ओ नुसरत–विजय; हेच–घटिया।

भावार्थ –हे कृष्ण! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखों का भोग ही। हे गोविन्द! हमें ऐसे राज्य से क्या प्रयोजन अथवा ऐसे भोगों से और जीवन से भी क्या लाभ है?

33. येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।।

तमन्ना थी जिनके लिए राज की,
खुशी जिनसे थी अशरत-ओ ताज की।
खड़े हैं वो तीर-ओ कमाँ जोड़कर,
ज़र-ओ माल-ओ जाँ सबसे मुँह मोड़कर।।

शब्दार्थ– येषाम्–जिनके; अर्थे–लिये; काङ्क्षितम्–इच्छित है; नः–हमें; राज्यम्–राज्य; भोगाः–भोग; सुखानि–सुख; च–और; ते–वे; इमे–ये; अवस्थिताः–खड़े हैं; युद्धे–युद्ध में; प्राणान्–प्राणों को; त्यक्त्वा–छोड़कर; धनानि–धनों को; च–और।

तमन्ना–आकांक्षा; अशरत-ओ ताज–राज्य-भोग।

भावार्थ –हमें जिनके लिये राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं, वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्यागकर युद्ध में खड़े हैं।

34. **आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।**
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।।

पिदर भी हैं दादे भी उस्ताद भी,
पिसर भी हैं और उनकी औलाद भी।
यह मामू, वो बीबी का भाई, वो बाप,
सभी में कराबत, सभी में मिलाप।।

शब्दार्थ – आचार्याः–आचार्य; पितरः–बुजुर्ग; पुत्राः–पुत्र; तथा–वैसे; एव–ही; च–भी; पितामहाः–दादा; मातुलाः मामा; श्वशुराः ससुर; पौत्राः–पोते; श्यालाः–साले; सम्बन्धिनः–रिश्तेदार; ।

पिदर–पिता; पिसर–पुत्र; कराबत–संबंध।

भावार्थ – इनमें गुरुजन, ताऊ-चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर, पौत्र, साले तथा और भी सम्बन्धी लोग हैं।

35. **एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।**
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।।

मुझे क़त्ल कर दें अगर बे-दरेग,
न फिर भी उठाऊँगा अपनों पे तेग़।
मधुमार क्या शय है दुनियाँ का राज,
न लूँ इस तरह तीनों आलम का बाज।।

शब्दार्थ– एतान्–इनको; हन्तुम्–मारने को; इच्छामि–चाहता हूँ; घ्नतः–मारे जाने पर; अपि–भी; मधुसूदन–मधु नामक राक्षस को मारने वाले हे श्रीकृष्ण; अपि–भले ही; त्रैलोक्यराज्यस्य–तीनों लोकों के राज्य के; हेतोः लिये; किम् नु–कहना ही क्या है; महीकृते–पृथिवी के लिये।

बे-दरेग–निर्दयतापूर्वक; तेग़–तलवार; बाज–राज्य।

भावार्थ – हे मधुसूदन! मुझे मारने आने पर भी और इनके मारने से तीनों लोकों का राज्य मिले तो भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता; फिर पृथ्वी के लिये तो कहना ही क्या है?

36. **निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।**
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः।।

फ़ना हों जो धृतराष्ट्र के पिसर,
तो होगा खुशी का न दिल में गुज़र।
ये सफ़्फ़ाक गर हो भी जायें तबाह,
न छोड़ेंगे पीछा हमारा गुनाह।।

शब्दार्थ– निहत्य–मारकर; धार्तराष्ट्रान्–धृतराष्ट्र के पुत्रों को; नः हमें; का–क्या; प्रीतिः–सुख; स्यात्–होगी; जनार्दन–हे जनार्दन; पापम्–पाप; एव–ही; आश्रयेत्–लगेगा; अस्मान्–हमें; हत्वा–मार कर; एतान्–इनको; आततायिनः–आततायियों को।
सफ़्फ़ाक–आततायी; गुनाह–पाप।

भावार्थ– हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों को मारकर तो हमें पाप ही लगेगा, क्योंकि ये हमारे अपने हैं।

37. **तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।**
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।।

ये धृतराष्ट्र के जो फ़रजन्द हैं,
ये माधो! सब अपने जिगरबन्द हैं।
अगर हम अज़ीजों को कर दें हलाक,
रहेंगे सदा ग़म से अन्दोहनाक।।

शब्दार्थ –तस्मात्–इसलिये; अर्हाः–उचित है; वयम्–हम; हन्तुम्–मारने के लिये; बान्धवान्–सम्बन्धियों को; स्व–अपने; जनम्–व्यक्ति को; हि–निश्चय से; कथम्–कैसे; हत्वा–मारकर; सुखिनः–सुखी; स्याम–होंगे; माधव–हे श्रीकृष्ण।
फ़रजन्द–बेटे; जिगरबन्द–बन्धु; अज़ीजों–प्यारों; हलाक–जान से मार देना; अन्दोहनाक–जलते रहना।

भावार्थ– हे श्रीकृष्ण! अपने ही बान्धव धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारना हमारे लिये उचित नहीं है; क्योंकि अपने ही कुटुम्ब को मारकर हम कैसे सुखी हो सकते हैं?

38. **यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।**
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ।।

समझ इनकी हर चन्द गहना गई,
दिलों पर हवा-ओ हवस छा गई ।
न समझें वो यारों से लड़ना ख़ता,
न एहसास, हों गर कबीले फ़ना ।।

शब्दार्थ— यद्यपि—यद्यपि; एते—ये; पश्यन्ति—देखते हैं; उपहत—मारा गया है; चेतसः—चित्त जिनका; कुलक्षयकृतम्— कुल के नाश करने वाले; दोषम्—दोष को; मित्रद्रोहे—मित्रों के साथ द्रोह करने में; च—भी; पातकम्—पाप को ।

हवा-ओ हवस—अहंकार तथा लोभ; एहसास—अनुभव होना; कबीले—कुल; फ़ना—नाश ।

भावार्थ— यद्यपि लोभ से भ्रष्टचित हुए ये लोग कुल के नाश से उत्पन्न दोष को और मित्रों से विरोध करने में पाप को नहीं देखते ।

39. **कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।**
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ।।

नहीं लेकिन ऐसे तो नादान हम,
बचें पाप से क्यों न भगवान् हम ।
कि ज़ाहिर है गर खानदाँ हों तबाह,
कहाँ इससे बढ़कर है कोई गुनाह ।।

शब्दार्थ— कथम्—कैसे; ज्ञेयम्—विचार करना चाहिये; अस्माभिः—हम लोगों को; पापात्—पाप से; अस्मात्—इससे; निवर्तितुम्—दूर रहने के लिये; कुलक्षयकृतम्—कुल के क्षय करने वाले; दोषम्—दोष को; प्रपस्यद्भिः—स्पष्ट देखने वाले; जनार्दन— हे जनार्दन !

ज़ाहिर—प्रकट ।

भावार्थ— हे श्रीकृष्ण ! कुल के नाश से उत्पन्न दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिये ।

40.　कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातना।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।।

कबीला फ़नाह गर कोई हो गया,
कदीमी वो धर्म उसका सब खो गया।
रहा धर्म पर जब न दार-ओ मदार,
अधर्म उसपे ग़ालिब हो अंजामकार।।

शब्दार्थ– कुलक्षये–कुल के नाश होने से; प्रणश्यन्ति–नष्ट हो जाते हैं; कुलधर्माः–कुल की परम्पराएँ; सनातनाः–पुरानी; धर्मे–धर्म के; नष्टे–नष्ट हो जाने पर; कुलम्–कुल; कृत्स्नम्–सारा; अधर्मः–अधर्म; अभिभवति–दबा लेता है; उत–भी।

कदीमी–सनातन; ग़ालिब–ग्रस्त; अंजामकार–अन्ततः।

भावार्थ– कुल की परम्पराओं के नाश से सनातन कुल-धर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्म के नाश हो जाने पर सम्पूर्ण कुल स्वार्थ में फंस कर पाप भी बहुत करने लग जाते हैं।

41.　अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।।

अधर्मी जो हो जायें सब मर्द-ओ ज़न,
बिगड़ जाये फिर औरतों का चलन।
रहें औरतें हो न जब पाकबाज़,
तो वर्णों में बाकी कहाँ इमत्याज़।।

शब्दार्थ– अधर्माभिभवात्–अधर्म द्वारा दबा लेने से; प्रदुष्यन्ति–बिगड़ जाती हैं; कुलस्त्रियः–कुल की स्त्रियाँ; स्त्रीषु– स्त्रियों के; दुष्टासु–बिगड़ जाने पर; वार्ष्णेय–हे कृष्ण! जायते–उत्पन्न हो जाता है; वर्णसंकरः–जातियों का मिश्रण।

मर्द-ओ जन–नर-नारी; पाकबाज–पवित्र; इमत्याज़–भेद।

भावार्थ– हे कृष्ण! पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और हे कृष्ण! स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर उत्पन्न होता है।

42. संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।।

जो वर्णों में ऐसी खराबी मचायें,
वो और उनके कुनबे जहन्नम में जायें।
बड़ों को न पिण्ड और पानी मिले,
तनज़्ज़ुल उन्हें ज़ावदानी मिले।।

शब्दार्थ– संकरः–वर्णसंकरता; नरकाय–नरक के लिये; एव–ही; कुलघ्नानाम्–कुल को नष्ट करने वालों के; कुलस्य–कुल के; च–और; पतन्ति–जा गिरते हैं; पितरः–बुजुर्ग, बड़ेरे; हि–निश्चय से; एषाम्–इनके; लुप्त–नष्ट; पिण्ड–भोजन; उदक–जल; क्रियाः–व्यवहार।

जहन्नम–नरक; जनज़्ज़ुल–पतन; ज़ावदानी–सदा ही।

भावार्थ– वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जाने के लिये ही होता है। वृद्धों तथा बच्चों को अन्न और जल देने वाला कोई नहीं रहता। वर्णसंकर से व्यभिचार फैल जाता है।

43. दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।।

कबीलों को ग़ारत करें जो बशर,
हों वर्ण उनके पापों से ज़ेर-ओ-ज़बर।
वो जातों की रीतें मिटाते रहें,
घरानों के दस्तूर जाते रहें।।

शब्दार्थ– दोषैः–दोषों से; एतैः–इन; कुलघ्नानाम्–कुल का हनन करने वाले लोगों के; वर्णसंकरकारकैः–वर्णसंकरता उत्पन्न करने वाले; उत्साद्यन्ते–नष्ट हो जाते हैं; जातिधर्माः–जाति-धर्म; कुलधर्माः–कुल-धर्म; च–और; शाश्वताः–सदा से चले आ रहे।

ग़ारत–घात; बशर–नर; ज़ेर-ओ ज़बर–नीचे ऊपर; दस्तूर–रस्म-ओ-रिवाज।

भावार्थ– हे कृष्ण! इन वर्णसंकर कारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुल धर्म और शाश्वत जाति धर्म दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

44. **उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।**
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम्।।

किसी खानदाँ का जो ही धर्म नाश,
न रीतों की परवाह न रस्मों का पास।
तो भगवान् हमने सुना है मदाम,
जहन्नम के अन्दर है उनका मकाम।।

शब्दार्थ– उत्सन्न–नष्ट हुए; कुलधर्माणाम्–कुल धर्म हैं जिनके; मनुष्याणाम्!–मनुष्यों के; नरके–नरक में; अनियतम्–अनन्त काल तक; वासः–निवास; भवति–होता है; इति–यह; अनुशुश्रुम–सुनते हैं।

मदाम–सदा से; जहन्नम–नरक; मकाम–स्थान।

भावार्थ– हे कृष्ण! जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे सब जातियों के मनुष्यों का अनिश्चित् काल तक नरक में वास होता है, ऐसा हम आप्त जनों से सुनते आये हैं।

45. **अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।**
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः।।

सद अफ़सोस हम खो के अक़्ल-ए सलीम,
यह करने लगे हैं गुनाह-ए अज़ीम।
बहायेंगे अफ़सोस अपनों का खूँ,
कि हैं बादशाही का सिर में जनूं।।

शब्दार्थ– अहो वत–शोक है कि; महत्–बड़े; पापम्–पाप को; कर्तुम्–करने के लिये; व्यवसिताः–तैयार हुए हैं; वयम्–हम; यत्–जो; राज्यसुखलोभेन–राज्य और सुख के लोभ से; हन्तुम्–मारने के लिये; स्वजनम्–अपने कुटुम्बियों को; उद्यताः–तैयार हो गये हैं।

सद अफ़सोस–बहुत खेद; अक़्ल-ए सलीम–विवेकिनी बुद्धि; गुनाह-ए अज़ीम–भारी पाप; जनूँ–शैतान।

भावार्थ– हा! शोक! हम लोग बुद्धिमान होकर भी महान् पाप करने को तैयार हो गये हैं, जो राज्य और सुख के लोभ से स्वजनों को मारने के लिये तैयार हो गये हैं।

46. यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्।।

यह बेहतर है धृतराष्ट्र के पिसर,
उड़ा दें जो तलवार से मेरा सर।
न हथ्यार, ले कर लड़ूँ उनके साथ,
बचाने को अपने उठाऊँ न हाथ।।

शब्दार्थ– माम्–मुझे; अप्रतीकारम्–मुकाबिला न करने वाले को; अशस्त्रम्–बिना शस्त्रवाले को; शस्त्रपाणयः–हाथ में शस्त्र लेने वाले; धार्तराष्ट्राः–धृतराष्ट्र के पुत्र; रणे–युद्ध में; हन्युः–मार दें; तत्–वह; मे–मेरे लिये; क्षेमतरम्–कहीं अधिक अच्छा; भवेत्–होगा।

भावार्थ– यदि मुझे शस्त्ररहित एवं सामना न करने वाले को शस्त्र हाथ में लिये हुए धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मार डालें तो वह मरना भी मेरे लिये अधिक कल्याणकारक होगा।

47. एकमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः।।

यह कहते हुए हाल-ए दिल नागहाँ,
दिये फैंक अर्जुन ने तीर-ओ कमाँ।
न रथ में खड़ा रह सका वो हर्जी,
जो दिल उसका बैठा तो बैठा वहीं।।

शब्दार्थ– एवम्–इस प्रकार; उक्त्वा–कहकर; संख्ये–युद्ध में; रथोपस्थे–रथ के पिछले भाग में; उपाविशत्–बैठ गया; विसृज्य–छोड़कर; सशरंम्–बाण सहित; चापम्–धनुष को; शोकसंविग्न–शोक से व्याकुल; मानसः–मन वाला।

हाल-ए दिल–मन की दशा, नागहाँ–शोक में ग्रस्त, हर्जी–दुःखी।

भावार्थ– रणभूमि में शोक से व्याकुल मन वाला अर्जुन इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

दूसरा अध्याय

इस शरीर के अतिरिक्त एक दूसरी वस्तु भी है जिसका नाम आत्मा है। जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर को प्राप्त करती है। इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकती क्योंक यह आत्मा अजर, अमर, शाश्वत, अच्छेद्य और नित्य है। केवल स्थूल शरीर ही नाशवान् एवं क्षणभंगुर है। इस आत्मा को कभी कोई सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी नहीं सताते हैं। ये तो इन्द्रियों के साथ विषयों का मेल होने पर ही अनुभव किये जाते हैं। धीर व्यक्ति को ये कभी विचलित नहीं करते हैं।

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय इन सब को समान समझकर व्यक्ति को अपना कर्म करना चाहिये। कर्म में व्यक्ति को सदा सुदृढ़ विचार रखना चाहिये। फल की इच्छा से कोई काम नहीं करना चाहिए। किसी कामना से किये गये कर्म केवल सुख-भोग की इच्छा से किये जाते हैं। इसलिये उनका फल न मिलने पर दुःख होना स्वाभाविक है। कर्म करने का ही मानव का अधिकार है परन्तु कर्मफल पर उसका कोई भी अधिकार नहीं है क्योंकि कर्मफल परमात्मा के अधिकार में है। न कर्मों का परित्याग करना चाहिये अपितु कर्त्तव्य समझकर कर्म करते रहना चाहिये। कर्म में आसक्त नहीं होना चाहिये। निष्काम भाव से कर्म करना तथा फल में समबुद्धि रखना ही वास्तविक कर्मयोग है। कर्मफल की इच्छा न रखनेवाला व्यक्ति कभी भी पापों में नहीं फँसता है।

सारी इच्छाओं का परित्याग करने पर ही व्यक्ति की बुद्धिस्थिर होती है। वह स्वयंमेव संतुष्ट रहता है। स्थिरबुद्धि वाला व्यक्ति दुःखों से घबराता नहीं है। सुख की कभी वह इच्छा नहीं करता है। वह राग द्वेष, भय और क्रोध से सर्वथा दूर रहता है। वह अपनी इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने ही नहीं देता है। इन्द्रियों को वश में करके परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। विषयों का ध्यान करने से ही उसमें आसक्ति होती है। राग-द्वेष रहित होकर जो व्यक्ति निष्काम भाव से कर्म करता है उसकी आत्मा सदा संतुष्ट रहती है। प्रसन्नचित मानव को कभी कोई दुःख नहीं सताता है क्योंकि उसकी बुद्धि शीघ्र ही स्थिर हो जाती है। इन्द्रियों को वश में रखना मानव के लिये परमावश्यक है। कामनाओं में फँसे रहने वाले व्यक्ति को कभी भी शांति नहीं मिलती है। यह अध्याय गीता का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय है इसीलिये इसे

गीता का प्राण कहा जाता है।

अर्जुन की दृष्टि में क्षात्र धर्म का सबसे बड़ा कार्य स्वजन रक्षा हैं धर्म रक्षा अथवा लोक कल्याण नहीं। कहते हैं धृतराष्ट्र आततायी है तो क्या? हम मर जायेंगे ये राजा हो जावेंगे। राज्य रहेगा तो स्वजनों के हाथ में। अपने कुल जनों में। अर्जुन के इस भ्रम को श्रीकृष्ण जी किस प्रकार से दूर करते हैं इस दूसरे अध्याय में देखिये।

1. तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः।।

जो अर्जुन का देखा यह रंज-ओ मलाल,
ग़म-ओ सोज़ दिल में तबीयत निढाल।
नज़र दुःख से बेचैन आँखों में नम,
तो भगवान् बोले ज़े-राह-ए कर्म।।

शब्दार्थ– तम्–उस; तथा–इस प्रकार; कृपया–करुणा से; आविष्टम्–भरे हुए; अश्रूपूर्ण–आँसुओं से भरे हुए; आकुलेक्षणम्–व्याकुल नेत्रों वाले; विषीदन्तम्–दुःखित को; इदम्–यह; वाक्यम्–वचन; उवाच–कहा; मधुसूदनः–कृष्ण ने।

रंज-ओ मलाल–बड़ा भारी दुःख; दुःख से बेचैन–शोकग्रस्त; नम–अश्रुपूर्ण; ज़े-राह-ए कर्म–दया करते हुए।

भावार्थ– इस प्रकार करुणा से व्याप्त आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण ने ये शब्द कहे।

2. कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।।

सुन अर्जुन! यह कैसी रवश है रज़ील,
जो दोज़ख में डाले, जो कर दे ज़लील।
कठिन वक्त में ऐसी क्यों बे-दिली,
न हो आर्यों में यूँ बे-दिली।।

शब्दार्थ– कुतः–कहाँ से; त्वा–तुझे; कश्मलम्–मोह, कलंक; इदम्–यह; विषमे–विषम समय में; समुपस्थितम्–आ पहुँचा; अनार्यजुष्टम्–जो आर्य लोगों के लिए अनजाना है; अस्वर्ग्यम्–जो स्वर्ग ले जाने वाला नहीं है; अकीर्तिकरम्–जो बदनामी करानेवाला है; अर्जुन–हे अर्जुन।

रवश–बात; रज़ील–दुःख में डालने वाली; दोज़ख–नरक; ज़लील–दुःखी; बे-दिली–निराशा।

भावार्थ– हे अर्जुन! तुझे विषम समय में यह मोह कहाँ से आ लगा। क्योंकि यह श्रेष्ठ पुरुषों के लिए अनजाना है, न स्वर्ग को देने वाला है अपितु कीर्ति को कलंकित करने वाला है।

3. क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।

तू अर्जुन न बन हीज़ नामर्द-ओ जार,
नहीं तेरे शाने शाया जी की हार।
यह कम हिम्मती छोड़ कर जी कड़ा,
अदू-सोज़ अर्जुन खड़ा हो खड़ा।।

शब्दार्थ– क्लैब्यम्–नामर्दी को; मा स्म गमः–मत जा; पार्थ–हे पृथा के पुत्र; एतत्–यह; त्वयि–तुझ में; उपपद्यते–ठीक लगता है; क्षुद्रम्–तुच्छ; हृदयदौर्बल्यम्–हृदय की दुर्बलता को; त्यक्त्वा–छोड़कर; उत्तिष्ठ–उठ खड़ा हो; परंतप–शत्रुओं को सता देने वाले।

हीज़ नामर्द-ओ जार–नपुंसक; शाने शाया–योग्य, अदू-सोज़–दुश्मनों को मारने वाला।

भावार्थ– हे अर्जुन! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता है। हे शत्रुओं के दमनकर्ता! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिये खड़ा हो जा।

4. कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।

वो बोला कि ऐ फ़ाताह-ए दुश्मना,
मधुमार मुझ से यह होगा कहाँ।
मुअज्ज़ज़ हैं भीषम दरूँ हैं गुरु,
बहाऊ मैं तीरों से इनका लहू।।

शब्दार्थ– कथम्–कैसे; भीष्मम्–भीष्म को; अहम्–मैं; संख्ये–युद्ध में; द्रोणम्–द्रोण को; च–और; मधुसूदन–हे कृष्ण! इषुभिः–बाणों से; प्रति–उनके विरुद्ध; योत्स्यामि–युद्ध करूँगा; पूजार्हा–दोनों पूजा के योग्य हैं; अरिसूदन–हे शत्रुओं का संहार करने वाले कृष्ण।

फ़ाताह-ए दुश्मना—शत्रुओं को मारने वाला; मुअज़्ज़ज़—पूजनीय; दरूँ— द्रोणाचार्य।

भावार्थ— हे कृष्ण! मैं रणभूमि में किस प्रकार बाणों से पूजनीय भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लडूँगा? क्योंकि हे शत्रुहन्ता! वे दोनों ही पूजनीय हैं।

5. **गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।**
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्।।

गुरु मोहतरम का नहीं खूँ रवा,
गदाई में इससे तो जीना भला।
मैं इन ख़ैर-ख़्वाहों का खूँ गर करूँ,
तो इशरत के लुकमे लहू से भरूँ।।

शब्दार्थ— गुरून्—गुरुओं को; अहत्वा—बिना मारे; हि—निश्चय से; महानुभावान्—पूजनीयों को; श्रेयः—श्रेय है; भोक्तुम्—खाना, पेट भर लेना; भैक्ष्यम्—भिक्षा माँग लेना; अपि—भी; इह—इस; लोके—संसार में; हत्वा—मार कर; अर्थकामान्—धन की कामना वाले; तु—तो; गुरून्—बड़े-बूढ़ों को; इह—यहाँ; एव—ही; भुंजीय—भोगूँगा; भोगान्—भोगों को; रुधिरप्रदिग्धान्—रुधिर से सने हुओं को।

मोहतरम—आदरणीय; रवा—उचित; गदाई—भिक्षा; ख़ैर-ख्वाहों—हित चाहने वाला, इशरत—भोग; लुकमे—ग्रास।

भावार्थ— ऐसे महापुरुषों को जो मेरे गुरु हैं उन्हें मारकर जीने की अपेक्षा इस संसार में भीख माँग कर खाना अच्छा है। भले ही वे सांसारिक लाभ के इच्छुक हों परन्तु हैं तो गुरुजन। यदि उनका वध होता है तो हमारे द्वारा भोग्य प्रत्येक वस्तु रक्त से सनी होगी।

6. **न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।**
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।।

मैं क्या जानूँ अच्छा है ऐ सर-परस्त,
शिकस्त उनको देना कि खाना शिकस्त।
ये धृतराष्ट्र के पिसर हैं तमाम,
उन्हें मार कर अपना जीना हराम।।

शब्दार्थ— च—भी; एतद्—यह; विद्मः—जानते हैं; कतरत्—कौन सा; नः—हमारे लिये; गरीयः—श्रेष्ठ है; यद्वा—अथवा; जयेम— हम

जीतेंगे; यदि वा—अथवा; नः—हम को; जयेयुः—वे जीतेंगे; वा—अथवा; नः—हम को; जयेयुः—वे जीतेंगे; यान्—जिनको; एव—ही; हत्वा—मार कर; जिजीविषामः—जीना चाहते हैं; ते—वे; अवस्थिताः—खड़े हैं; प्रमुखे—सामने; धार्तराष्ट्राः—धृतराष्ट्र के पुत्र ।

सर-परस्त—संरक्षक; शिकस्त—हार; पितर—पुत्र ।

भावार्थ— हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना इन दोनों में से कौन-सा श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे । परन्तु स्वजन नाश तो निश्चित है । जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही हमारे आत्मीय धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे समक्ष खड़े हैं ।

7. **कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।**
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।

तबीयत है कमज़ोर दिल नर्म है,
यह उलझन है, अब क्या मेरा धर्म है?
मैं चेला हूँ मेरी मदद कीजिये,
जो हो नेक रस्ता बता दीजिये ।।

शब्दार्थ— कार्पण्य—दया; दोषोपहत—दोषग्रस्त; पृच्छामि—पूछता हूँ; त्वाम्—तुझे; धर्म-संमूढ-चेताः—धर्म के विषय में मूढ़ हो गया है चित्त जिसका; यत्—जो; श्रेयः—भला; स्यात्—हो; निश्चितम्—निश्चित रूप से; ब्रूहि—कह; तत्—वह; में—मुझे; ते—तेरा; अहम्—मैं; शाधि—शिक्षा दो; माम्—मुझे; त्वां—तुझे; प्रपन्नम्—शरणागत को ।

तबीयत—स्वभाव ।

भावार्थ— कायरतारूप दोष से उपहत हुए स्वभाव वाला तथा धर्म के विषय में मोहितचित हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि अब मैं आपका शिष्य हूँ, एवं आपकी शरणागत हूँ । कृपया मुझे उपदेश दीजिये ।

8. **न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।**
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।।

जहाँ का मिले बे-खलल मुझको राज,
मुझे देवता भी जो दें आके बाज।
मैं उस हाल में भी रहूँगा उदास,
इसी दर्द से गुम हैं मेरे हवास।

शब्दार्थ– हि–क्योंकि; प्रपश्यामि–देखता हूँ; मम–मेरे; अपनुद्यात्–दूर कर सके; यत्–जो; शोकम्–शोक को; उच्छोषणम्–सुखाने वाले को; इन्द्रियाणाम्–इन्द्रियों के; अवाप्य–प्राप्त करके; भूमौ–भूमि में; असपत्नम्–निष्कंटक; ऋद्धम्–समृद्ध; राज्यम्–राज्य को; सुराणाम्–देवताओं के; अपि–भी; च–और; आधिपत्यम्–शासन को ।

बे खलल–निष्कंटक; बाज–राज्य; हवास–इन्द्रियाँ ।

भावार्थ– भूमि में निष्कण्टक, धन-धान्यसम्पन्न समृद्ध शत्रुहीन राज्य को पाकर और देवताओं के स्वामीपने को प्राप्त होकर भी मैं उस उपाय को नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियों के सुखाने वाले शोक को दूर कर सके ।

9. **एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः ।**
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।।

गुडाकेश वो फ़ाताह-ए दुश्मना,
हृषीकेश से कर चुका जब ब्याँ।
तो यूँ कहके चुप हो गया वो हज़ीं,
मैं गोविन्द लड़ता-लड़ाता नहीं ।।

शब्दार्थ– एवम्–इस प्रकार; उक्त्वा–कह कर; हृषीकेशं–श्रीकृष्ण; गुडाकेशः–अर्जुन; परंतप–हे पराक्रमी; योत्स्ये–युद्ध करूँगा; इति–यह; गोविन्दम्–गोविन्द को; उक्त्वा–कहकर; तूष्णीम्–चुप; बभूव–हो गया; ह–यह स्पष्ट है ।

फ़ाताह-ए दुश्मना–दुश्मनों पर विजय पाने वाला; हजीं–दुःखी

भावार्थ– इस प्रकार कहने के पश्चात् शत्रुओं का दमन करने वाला अर्जुन कृष्ण से बोला ''हे गोविन्द ! मैं युद्ध नहीं करूँगा और चुप हो गया ।

10. **तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।**
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ।।

इधर फ़ौज थी और उधर फ़ौज थी ।
दिल अर्जुन का और ग़म की इक मौज थी ।
हृषीकेश कुछ मुस्कराने लगे,
यह उरफ़ाँ[2] के मोती लुटाने लगे ।।

शब्दार्थ– तम्–उसे; उवाच–बोला; हृषीकेशः–श्रीकृष्ण; प्रहसन्–हँसते हुए; इव–मानो; भारत–हे भरतवंशी धृतराष्ट्र; सेनयोः–सेनाओं के; उभयोः–दोनों; मध्ये–बीच में; विषीदन्तम्–शोक करते हुए को; इदम्–यह; वचः वचन् ।
मौज–लहर; उरफ़ाँ–अलौकिक ।

भावार्थ– श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में शोक करते हुए उस अर्जुन को हँसते हुए ये यह वचन बोले ।

11. **अशोच्यानान्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।**
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।

तू बातों के आकिल! न हो दिल मलूल,
न कर उनका ग़म जिनका ग़म है फ़ज़ूल ।
सितायें न दाना को रंज-ओ अलम,
मरे का न सोग और न जीते का ग़म ।।

शब्दार्थ– अशोच्यान्ः–जिनके लिये शोक करना उचित नहीं हैं; अन्वशोचः शोक करता है; त्वं–तू; प्रज्ञावादान्–ज्ञान की बातें; च–और; भाषसे–बोलता है; गतासून्–जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये; अगतासून्–जिनके प्राण नहीं गये उनके लिये; च–और; अनुशोचन्ति–शोक करते हैं; पण्डिताः–पण्डित लोग ।
बातों के आकिल–विद्वान; मलूल–व्याकुल; दाना–विद्वान्; रंज-ओ अलम–दुःख तथा शोक ।

भावार्थ– तू न शोक करने योग्य व्यक्तियों के लिये शोक करता है और पण्डितों जैसे वचनों को कहता है; परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये भी विद्वान् लोग शोक नहीं करते कि उन्हें कर्तव्य पालन करना है ।

12. **न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।**
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।

अज़ल से थी मौजूद हस्ती मेरी।
अज़ल से थी मौजूद हस्ती तेरी।
ये राजे सभी और ये खलकत तमाम,
हमेशा से हैं और रहेंगे मदाम।।

शब्दार्थ– तु–तो; एव–भी; अहम्–मैं; जातु–किसी काल में; आसम्–था; त्वम्–तू; इमे–ये; जनाधिपाः–राजा लोग; च–और; एव–ही; भविष्याम्–होंगे; सर्वे–सब; वयम्–हम; अतः–इससे; परम्–आगे।

अज़ल–आदिकाल; हस्ती–अस्तित्व, खलकत–जनता, मदाम–सदा।

भावार्थ– न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि भविष्य में हम लोग नहीं रहेंगे। जीवात्मा नित्य है, एक शरीर त्यागने पर दूसरा शरीर धारण कर लेता है।

13. **देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।**
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।

करे रूह जैसे तग़ैयुर बग़ैर,
लड़कपन जवानी बुढ़ापे की सैर।
यूँ ही फिर नये तन में होगी मकीं,
अगर दिल है मजबूत चिन्ता नहीं।।

शब्दार्थ– देहिनः –देह धारण करने वाला जीवात्मा को; अस्मिन्–इस; यथा–जैसे; देहे–शरीर में; कौमारम्–बालपन; यौवनम्–युवावस्था; जरा–बुढ़ापा; तथा–वैसे; देहान्तर–दूसरा देह; प्राप्तिः–प्राप्त हो जाना है; धीरः–धीर पुरुष; तत्र–उस विषय में; मुह्यति–मोह को प्राप्त होता है।

तग़ैयुर–परिवर्तन; मकीं–प्राप्त।

भावार्थ– जैसे आत्मा को इस शरीर में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, धीर व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से मोह को प्राप्त नहीं होता है।

14. **मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।**
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।

यह गर्मी, यह सर्दी यह दुःख-सुख तमाम,
बस एहसास-ए अशिया से हों लाकलाम।
पै कैफ़ियत आनी जानी हैं ये,
सहे जा खुशी से कि फ़ानी हैं ये।।

शब्दार्थ– मात्रास्पर्शाः–इन्द्रियों के स्पर्श; तु–तो; कौन्तेय–हे कुन्ती पुत्र; शीतोष्ण–सर्दी-गर्मी; सुख-दुःखदा–सुख-दुःख देने वाले हैं; आगम–आने वाले; अपायिनः–जाने वाले; अनित्याः–अनित्य हैं; तान्–उनको; तितिक्षस्व–सहन कर; भारत–हे भरतकुल के।

एहसास-ए अशिया–सांसारिक पदार्थों के मेल से; लाकलाम–निःसंदेह; पै–चूंकि; कैफ़ीयतें–गर्मी-सर्दी; फ़ानी–नश्वर।

भावार्थ– हे अर्जुन! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! उनको तू सहन कर।

15. **यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।**
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।।

वो इन्साँ असर जिसपे इनका नहीं,
खुशी से जो खुश हो न ग़म से हज़ीं।
सुन अर्जुन है कायम दिल उसका मदाम,
उसी की है शाया हैयात-ए दवाम।।

शब्दार्थ– यम्–जिसको; हि–निश्चय से; व्यथयन्ति–दुःख देते हैं; एते–ये; पुरुषम्–पुरुष को; पुरुषर्षभ–पुरुषों में श्रेष्ठ; समदुःखसुखम्–दुःख तथा सुख को एक-समान समझने वाले; धीरम्–धीर पुरुष को; सः–वह; अमृतत्वाय–अमरत्व के लिये; कल्पते–समर्थ होता है।

मदाम–सदा; शायाँ–योग्य; हैयात-ए दयाम–मोक्ष।

भावार्थ– हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन! दुःख-सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते क्योंकि इन दोनों में वह समभाव रहता है। वह निश्चित् रूप से मोक्ष के योग्य होता है।

16. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।

जो बातल है मौजूद होता नहीं,
जो हक है वो नाबूद होता नहीं।
वो हैं बूद-ओ नाबूद से बाखबर,
हक़ीक़त पे रहती है जिनकी नज़र।।

शब्दार्थ— असतः—असत् का; विद्यतेः—होता है; भावः—अस्तित्व; अभावः—अभाव; विद्यते—होता है; सतः—सत् का; उभयोः—दोनों का; अपि—भी; दुष्टः—देखा गया है; अन्तः—अन्त; तत्त्व—ज्ञान; तु—तो; अनयोः—इन; तत्वदर्शिभिः—तत्वज्ञानियों द्वारा।

बातल—असत्; हक—सत्; नाबूद—अप्रगट; बूद—भाव; नाबूद—अभाव; बाख़बर—विदित; हक़ीक़त—तत्त्व।

भावार्थ— असत वस्तु (भौतिक शरीर) की सत्ता तो नहीं है और सत् (आत्मा) का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों का ही तत्त्वज्ञानी पुरुषों ने विचार करके यह ठीक-ठीक निष्कर्ष निकाला है।

17. अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।

उसी को बक़ा है उसी को सबात,
जहाँ पर है छाई हुई जिसकी ज़ात।
भला किसकी ताक़त है किसकी मजाल,
फ़ना कर सके हस्ती-ए लाज़वाल।।

शब्दार्थ— अविनाशि—नाशरहित; तु—तो; तत्—उसे; विद्धि—जान; येन—जिससे; सर्वम्—सब; इदम्—यह; ततम्—व्याप्त है; विनाशम्—नाश; अव्ययस्य—नाशरहित का; अस्य—इसका; कश्चित्—कोई भी; कर्त्तुम्—करने को; अर्हति—समर्थ है।

बक़ा—अविनाशी; सबात—स्थित; मज़ाल—समर्थता; फ़ना—नाश; हस्ती-ए लाज़वाल—अनश्वर सत्ता।

भावार्थ— जिस आत्मसत्ता से हमारा यह शरीर व्याप्त है, वह अविनाशी है। इस अव्यर्थ आत्म सत्ता का कोई भी विनाश नहीं कर सकता है।

18. अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।

बसाये हैं जिस आत्मा ने वजूद,
वो कायम है दायम है और बे-हदूद।
है फ़ानी बदन आत्मा लाज़वाल,
फिर अर्जुन है क्यों जंग में कील-ओ काल।।

शब्दार्थ— अन्तवन्तः—नाशवान्; इमे—ये; देहाः—सब शरीर; नित्यस्य—नित्यस्वरूप के; उक्ताः—कहे गये हैं; शरीरिणः—शरीर जिसके लिये है उस जीवात्मा के; अनाशिनः—नाशरहित के; अप्रमेयस्य—अज्ञेय के; तस्मात्—इसलिये; युध्यस्व—युद्ध कर; भारत—हे भरतवंश के पुत्र!

दायम—नित्य; बेहदूद—असीम; लाजवाल—अविनाशी; कील-ओ काल—दुविधा।

भावार्थ— अविनाशी, अप्रमेय एवं शाश्वत आत्मा की जो वस्तु नष्ट होती है वह भौतिक शरीर। शरीर का अंत अवश्यम्भावी है। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! तू युद्ध कर।

19. य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।

कभी खून करती नहीं आत्मा,
कभी खुद भी मरती नहीं आत्मा।
न कातल है यह और न मकतूल है,
जो ऐसा समझता है मझहूल है।।

शब्दार्थ— यः—जो; एनम्—इस आत्मा को; वेत्ति—समझता है; हन्तारम्—मारने वाला; यः—जो; च—और; एनम्—इसको; मन्यते—समझता है; हतम्—मारा हुआ; उभौ—दोनों; तौ—वे दोनों; विजानीतः—जानते हैं; अयम्—यह आत्मा; हन्ति—मारता है; न—नहीं; हन्यते—मारा जाता है।

कातल—घातक; मकतूल—मरने वाला; मझहूल—मूर्ख।

भावार्थ— जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही अज्ञानी हैं; क्योंकि यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।

20. न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

जन्म इसको लेना न मरना इसे,
न आकर जहाँ से गुज़रना इसे।
अनादी फ़ना और तग़ैयुर से पाक,
यह मरती नहीं गो बदन हो हलाक।।

शब्दार्थ– जायते–उत्पन्न होता है; म्रियते–मरता है; वा–और; कदाचित्–कभी; अयम्–यह आत्मा; भूत्वा–अस्तित्व में आकर; भविता–होने वाला है; वा–अथवा; भूयः–फिर; अजः–अजन्मा; नित्यः–नित्य; शाश्वतः–परिवर्तनरहित; अयम्–यह आत्मा; पुराणः–पुरातन; न हन्यते–नहीं मरता है; हन्यमाने–वध हो जाने पर; शरीरे–शरीर के ।

फ़ना–नाश; तग़ैयुर–परिवर्तन; गो–भले ही; बदन–शरीर; हलाक–मारे जाने पर ।

भावार्थ– यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है । शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता ।

21. वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ।।

जो समझे इसे दायम-ओ लाइज़ाल,
मुबररा वलादत से और बे-ज़वाल।
किसी का वो क्योंकर बहायेगा खून,
किसी का वो क्योंकर करायेगा खून।।

शब्दार्थ– वेद–जान जाता है; अविनाशिनम्–अविनाशी; नित्यम्–नित्य; यः–जो व्यक्ति; एनम्–इस आत्मा को; अजम्–अजन्मा को; अव्ययम्–अपरिवर्तनशील को; कथम्–कैसे; सः–वह; पुरुषः–पुरुष; पार्थ–हे अर्जुन! कम्–किसको; घातयति–मरवाता है; हन्ति–मारता है; कम्–किसको ।

दायम–नित्य; लाइज़ाल–अविनाशी; मुबर्रा–ऊपर उठा हुआ, वलादत–जन्म; बे-ज़वाल–निर्विकार ।

भावार्थ– हे अर्जुन! जो पुरुष इस आत्मा को नाशरहित, नित्य, अजन्मा और

अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है?

22. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

बदलता है इन्साँ लिबास-ए-कुहन,
नया जामा करता है फिर ज़ेब-ए-तन।
इसी तरह कालिब बदलती है रूह,
नये भेस में फिर निकलती है रूह।।

शब्दार्थ– वासांसि–वस्त्र; जीर्णानि–फटे-पुराने; यथा–जैसे; विहाय–छोड़कर; नवानि–नये; गृह्णाति–ग्रहण करता है; नरः–मनुष्य; अपराणि–दूसरे; तथा–वैसे; शरीराणि–शरीर; विहाय–छोड़ कर; जीर्णानि–जीर्ण-शीर्ण; अन्यानि–अन्य; संयाति–प्राप्त करता है; नवानि–नये; देही–जीवात्मा।

लिबास-ए कुहन–पुराने वस्त्र; जामा–वस्त्र; ज़ेब-ए तन–शरीर पर सुन्दर लगना; कालिब–शरीर; रूह–आत्मा।

भावार्थ– जिस प्रकार व्यक्ति पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

23. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

कटेगी न तलवार से आत्मा,
जलेगी कहाँ आग से आत्मा।
न गीली हो पानी लगाने से यह,
न सूखे हवा में सुखाने से यह।।

शब्दार्थ– एनम्–इस आत्मा को; छिन्दन्ति–छेद सकते हैं; शस्त्राणि–शस्त्र; एनम्–इसको; दहति–जलाती है; पावकः–अग्नि; च–और; एनम्–इसको; क्लेदयन्ति– गीला कर सकते हैं; आपः –जल; शोषयति–सुखाता है; मारुतः–वायु।

भावार्थ– इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसको आग जला नहीं सकती, इसको जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता। क्योंकि यह आत्मा नित्य है।

24. अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।

न कट ही सके और न जल ही सके,
न सूखे न पानी से गल ही सके।
कदीम और अटल भी है, दायम भी है,
मूहीत-ए-जहाँ भी है कायम भी है।।

शब्दार्थ— अच्छेद्यः—जिसे छेदा नहीं जा सकता; अयम्—यह; अदाह्यः—जिसे जलाया नहीं जा सकता; अयम्—यह; अक्लेद्यः—जिसे भिगोया नहीं जा सकता; अशोष्य—जिसे सुखाया नहीं जा सकता; एव—ही; च—और; नित्यः—नित्य; सर्वगतः—सबके अन्दर व्याप्त; स्थाणुः—स्थिर; अचलः—अचल; अयम्—यह; सनातनः — प्राचीन। कदीम—सनातन; दायम—नित्य; मूहीत-ए जहाँ—सर्वगत; कायम—अचल।

भावार्थ— यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है और यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है।

25. अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।

नहीं आत्मा को तग़ैयुर ज़वाल,
हवास उनको पायें न पहुँचे ख़्याल।
तुझे आत्मा का जो यह ज्ञान है,
तो फिर किस लिये ग़म से हलकान है।।

शब्दार्थ— अव्यक्तः—इन्द्रियों का विषय नहीं है; अयम्—यह आत्मा; अचिन्त्यः—मन का विषय नहीं है; अयम्—यह आत्मा; अविकार्यः—विकाररहित; अयम्—यह आत्मा; उच्यते—कहा जाता है; तस्मात्—इसलिये; एवम्—इस प्रकार का; विदित्वा—समझकर; एनम्—इस आत्मा को; अनुशोचितुम—शोक करने को; अर्हसि—चाहिये।

ज़वाल—पतन; हवास—इन्द्रियां; हलकान—घबराया हुआ।

भावार्थ— यह आत्मा अव्यक्त है, अचिन्त्य है, अपरिवर्तनीय कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! यह जानकर तुम्हें शरीर की मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिये।

26. **अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।**
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।।

अगर तू समझता है यह आत्मा,
हो पैदा कभी और कभी हो फ़ना।
तो फिर भी है लाज़म तुझे ओ कवि!
कि ग़म आत्मा का न करना कभी।।

शब्दार्थ– अथ च–और यदि; एनम्–इस आत्मा को; नित्यजातम्–सदा पैदा होने वाला; नित्यम्–सदा; वा–अथवा; मन्यसे–समझता है; मृतम्–मरने वाला; तथापि–तो भी; त्वम्–तू; महाबाहो–बड़ी-बड़ी भुजाओं वाले; एवम्–इस प्रकार; शोचितुम्–शोक करने को; अर्हसि–योग्य है।

फ़ना– नाश; लाज़म–उचित; कवी–शूरवीर।

भावार्थ– किन्तु यदि तू इस आत्मा को सदा जन्मने वाला तथा सदा मरने वाला मानता हो, तो भी हे महाबाहो! तू इस प्रकार शोक करने को योग्य नहीं है।

27. **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।

जो पैदा हो मौत उसको आये ज़रूर,
मरे तो जन्म फिर वो पाये जरूर।
जो यह अमर लाज़म है और नागज़ीर,
तो फिर किस लिये है तू ग़म का असीर।।

शब्दार्थ– जातस्य–जो जन्मा है उसकी; हि–निश्चय से; ध्रुवः–निश्चितः मृत्युः–मौत; ध्रुवम्–निश्चित है; जन्म–जन्म; मृतस्य–मरे हुए का; च–और; तस्मात्–इसलिये; अपरिहार्ये–जो टाला नहीं जा सकता; अर्थे–विषय में; त्वम्–तू; शोचितुम्–शोक के लिये; अर्हसि–उचित है।

लाज़म–ज़रूरी; नागज़ीर–अटल; असीर–ग्रस्त।

भावार्थ– इस मान्यता के अनुसार जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। अतः ऐसे अपरिहार्य कार्य के लिये शोक करना उचित नहीं है।

28. **अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।**
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।।

निगाहों से पहले निहाँ हों वजूद
ये फिर बीच में कुछ ऐयां हों वजूद।
निहाँ फिर ये हो जायें इंजाम-ए-कार,
तू अर्जुन है फिर किस लिये बेकरार।।

शब्दार्थ– अव्यक्त–सूक्ष्म; आदीनि–आदि; भूतानि–सब प्राणी; व्यक्त–स्थूल; मध्यानि–मध्य है जिनका; भारत–हे भरतवंश के; अव्यक्त–सूक्ष्म; निधनानि–निधन; एव–ही; तत्र–इसमें; का–क्या; परिदेवना– शोक।

निहाँ–अव्यक्त; वजूद–व्यक्त; ऐयाँ–व्यक्त, इन्जाम-ए कार–आखिरकार; बेकरार–चिन्तित।

भावार्थ– हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे और मरने के बाद भी अप्रकट हो जाने वाले हैं, केवल बीच में ही प्रकट हैं। अतः शोक करने की क्या आवश्यकता है।

29. **आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।**
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।

कोई आत्मा से तअज्जुब में आये,
कोई बात हैरत से उसकी सुनाये।
कोई जिक्र सुन-सुन के हैरान है,
मगर सुन-सुना कर भी अन्जान है।।

शब्दार्थ– आश्चर्यवत्–आश्चर्य की तरह; पश्यति–देखता है; कश्चित्–कोई; एनम्–इस आत्मा को; आश्चर्यवत्–आश्चर्य की तरह; वदति–वर्णन करता है; तथा–वैसे; एव–ही; च–और; अन्यः–दूसरा कोई; आश्चर्यवत्–आश्चर्य की तरह; च–और; एनम्–इस आत्मा को; अन्यः–अन्य कोई; शृणोति–सुनता है; श्रुत्वा–सुनकर; अपि–भी; एनम्–इसको; वेद–जानता है; च–और; एव–ही; कश्चित्–कोई।

तअज्जुब–आश्चर्य; जिक्र–बात।

भावार्थ— कोई एक महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की भाँति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्त्व का आश्चर्य की भाँति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्य की भाँति सुनता है और कोई-कोई तो सुनकर भी इसको समझ नहीं पाता।

30. **देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।**
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।

जो है सबके तन में मकीं आत्मा।
यह दायम है, फ़ानी नहीं आत्मा।
जो इस पर यकीं है तो भारत के लाल!
न कर एहल-ए हस्ती का रंज-ओ-मलाल।।

शब्दार्थ— देही—आत्मा; नित्यम्—सदा ही; अवध्यः—जिसका वध न किया जा सके; अयम्—यह; देहे—देह में; सर्वस्य—सबके; भारत—हे अर्जुन! तस्मात्—इसलिये; सर्वाणि—सब; भूतानि—प्राणियों के लिये; त्वम्—तू; शोचितुम्—शोक करने को; अर्हसि— उचित है।
मकीं—निवास; दायम—नित्य; यकीं—विश्वास; एहल-ए हस्ती—शरीरों का; रंज-ओ मलाल—दुःख एवं शोक।

भावार्थ— हे अर्जुन! यह आत्मा सबके शरीरों में सदा ही अवध्य है। अतः तुझे किसी भी प्राणी के लिये शोक नहीं करना चाहिए।

31. **स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।**
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।

तेरा फ़र्ज क्या है रख उस पर नज़र,
न जी डगमगा उसकी तकमील कर।
अमल क्षत्री का कोई क्यों न हो,
न पहुँचे कभी धर्म की जंग को।।

शब्दार्थ— स्वधर्मम्—अपने धर्म को; अपि—भी; च—और; अवेक्ष्य—देखकर; विकम्पितुम्—हिम्मत हारने को; अर्हसि—योग्य है; हि—क्योंकि; धर्म्यात् युद्धात्—धर्म-युद्ध से; श्रेयः—बढ़ कर; अन्यत्—दूसरा कुछ;

क्षत्रियस्य—क्षत्रिय का; विद्यते— होता ।
तकमील—पूरा करना; अमल—कर्म ।

भावार्थ— अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है अर्थात् तुझे भय नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्त्तव्य नहीं है ।

32. यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।।

है अर्जुन वही क्षत्री खुश-नसीब,
मिले माहर का जिनको ऐसा अजीब ।
यह बिन माँगे नेमत खुद आई है घर,
खुले खुद-बखुद आके जन्नत के दर ।।

शब्दार्थ— यदृच्छया—अपने आप; च—और; उपपन्नम्—प्राप्त हुए; स्वर्गद्वारम्—स्वर्ग के द्वार; अपावृतम्—खुला हुआ; सुखिनः—सुखी लोग; क्षत्रियाः—क्षत्रिय लोग; पार्थ—हे अर्जुन! लभन्ते —प्राप्त करते हैं; युद्धम्—युद्ध को; ईदृशम्—इस प्रकार के ।
माहर का—युद्ध; नेमत—सुअवसर, जन्नत—स्वर्ग ।

भावार्थ— अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान् क्षत्रिय लोग ही पाते हैं ।

33. अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।।

अगर धर्म की तू लड़ेगा न जंग,
और इस जंग में कुछ करेगा दरंग ।
तो पत तेरी बाकी रहेगी न धर्म,
तुझे पाप घेरेंगे आयेगी शर्म ।।

शब्दार्थ— अथ—और; चेत्—यदि; त्वम्—तू; इमम्—इस; धर्म्यम्—धर्म वाले; संग्रामम्—युद्ध को; करिष्यसि—करेगा; ततः—तब; स्वधर्मम्—स्वधर्म को; कीर्तिम्—यश को; च—और; हित्वा—खोकर; पापम्—पाप को; अवाप्स्यसि—प्राप्त होगा ।

दरंग—आना-कानी ।

भावार्थ— किन्तु यदि तू इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा ।

34. अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।।

तुझे लोग देखेंगे तहकीर से,
न लेंगे तेरा नाम तौकीर से ।
जो बा-आबरू इस जहाँ में रहे,
वो मरने को ज़िल्लत पे तरजीह दे ।।

शब्दार्थ— अकीर्तिम्—अपयश को; च—और; अपि—भी; भूतानि—सब लोग; कथयिष्यन्ति—कहेंगे; ते—तेरी; अव्ययाम्—कभी न समाप्त होने वाली; संभावितस्य—सम्मानित व्यक्ति की; च—और; अकीर्तिः—अपयश; मरणात्—मरने से; अतिरिच्यत—अधिक होता है ।

तहकीर—द्वेष भरी दृष्टि से, तौकीर—मानपूर्वक, बा-आबरू—मानसहित, जिल्लत—अपमान; तरजीह—प्राथमिकता ।

भावार्थ— सब लोग तेरी बहुत काल तक रहने वाले अपयश का वर्णन करेंगे और सम्मानित व्यक्ति के लिये अपयश मृत्यु से भी बढ़कर दुःख है ।

35. भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ।।

कहेंगे बहादुर महारथ सवार,
तू मैदां से डर कर हुआ है फ़रार ।
तुझे सब बुलाते हैं इज़्ज़त से अब,
ये लेंगे तेरा नाम ज़िल्लत से तब ।।

शब्दार्थ— भयात्—भय के कारण; रणात्—युद्ध से; उपरतम्—विमुख को; मंस्यन्ते—समझेंगे; त्वाम्—तुझे, महारथाः—बड़े-बड़े योद्धा लोग; येषाम्—जिनके लिये; च—और; त्वम्—तू; बहुमतः—आदरणीय;

भूत्वा—होकर; यास्यसि—हो जाएगा। लाघवम्—छोटेपन को।

भावार्थ— जिनकी दृष्टि में तू पहले बहुत सम्मानित हुआ करता था अब उनकी दृष्टि में लघुता को प्राप्त होगा, वे महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से भागा हुआ मानेंगे।

36. अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।।

इधर तेरे दुश्मन जो रखते हैं कद,
जिन्हें हैं शुजायत पे तेरी हसद।
वो बोलेंगे नागुफतनी बोलियाँ,
मिले रंज-ओ-ग़म इससे बढ़ कर कहाँ।।

शब्दार्थ— अवाच्यवादान्—न कहने योग्य बातें; च—और; बहून—बहुत से; वदिष्यन्ति—कहेंगे; तव—तेरे; अहिताः—अहित चाहने वाले शत्रु; निन्दन्तः—निन्दा करते हुए; तव—तेरे; सामर्थ्यम्—सामर्थ्य की; ततः—इससे, दुःखतरम्—अधिक दुःखदायी बात; नु—निश्चय से; किम्—क्या है?

कद—वैरभाव; शुजायद—वीरता, हसद—डाह (ईर्ष्या), नागुफ़तनी—न कहने योग्य।

भावार्थ— तेरे शत्रु तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुझे बहुत से न कहने योग्य वचन भी कहेंगे; उससे अधिक दुःख तेरे लिये और क्या होगा?

37. हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

मरेगा तो पायेगा जन्नत में घर,
अगर जीत जाये तो दुनियाँ हो सर।
उठ अर्जुन खड़ा हो दिखा ज़ोर-ए जंग,
कि मरदों को मैदां से हटना है नंग।।

शब्दार्थ— हतः—मर गया; वा—या; प्राप्स्यसि—प्राप्त करेगा, जायेगा; स्वर्गम्—स्वर्गलोक को; जित्वा—जीतकर; वा—या; भोक्ष्यसे—भोगेगा; महीम्—पृथ्वी को; तस्मात्—इसलिये; उत्तिष्ठ—उठ खड़ा हो;

कौन्तेय—हे कुन्ती पुत्र अर्जुन; युद्धाय—युद्ध के लिये; कृतनिश्चयः— निश्चय करके।

सर—विजय; नंग—अपमान।

भावार्थ— हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! यदि युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग को प्राप्त होगा और जीत गया तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा। अतः तू युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा और युद्ध कर।

38. **सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

हो सुख या कि दुःख सबको यकसाँ समझ,
मुसाबी यहाँ नफ़ा-ओ नुकसाँ समझ।
बराबर समझ जंग में जीत हार,
बचेगा गुनाहों से दो हाथ मार।।

शब्दार्थ— सुखदुःखे—सुख और दुःख; समे—एक समान; कृत्वा—करके, लाभालाभौ—लाभ और अलाभ; जयाजयौ—जय और अजय; ततः—तब; युद्धाय—युद्ध के लिये; युज्यस्व—जुट जा; एवम्—इस प्रकार; पापम्—पाप को; अवाप्स्यसि—प्राप्त होगा।

यकसाँ—समान, मुसाबी—बराबर; गुनाहों—पापों

भावार्थ— जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख को समान समझकर, तू युद्ध के लिये तैयार हो जा; ऐसा करने पर तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

39. **एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।**
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।

यह तालीम थी साँख्य के ज्ञान से,
समझ योग की बात अब ध्यान से।
अगर योग में तुझ को ही इन्हमाक,
तो कर्मों के बन्धन से हो जाये पाक।।

शब्दार्थ— एषा—यह; ते—तुझे; अभिहिता—वर्णन किया गया; सांख्ये—सांख्य योग में; बुद्धिः—ज्ञान; योगे—योग मार्ग में; तु—तो; इमाम्—इसको; शृणु—सुन; बुद्धया—बुद्धिः से; युक्तः—युक्त हुआ; यया—जिससे;

पार्थ—हे पृथा के पुत्र; कर्मबन्धम्—कर्म के बन्धन को; प्रहास्यसि—मुक्त हो जाओगे।
तालीम—शिक्षा; इन्हमाक—स्थित।

भावार्थ— हे अर्जुन! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोग के विषय में कही गई और अब तू इसको कर्मयोग के विषय में सुन—जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन को भली-भाँति त्याग देगा अर्थात् सर्वथा नष्ट कर डालेगा।

40. नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

न कोशिश हो इसमें कोई रायेगाँ,
हो रस्ते में उसके रुकावट कहाँ।।
ज़रा भी जो यह धर्म आ जायेगा,
तो खौफ़-ओ ख़तर से बचा जायेगा।।

शब्दार्थ— न—नहीं; इह—यहाँ; अभिक्रम—आरम्भ किये हुए का; नाशः—नाश; अस्ति— है; प्रत्यवायः—उलटा फल; विद्यते—होता है; स्वल्पम्—थोड़ा; अपि—भी; अस्य—इसका; धर्मस्य—धर्म का; त्रायते—रक्षा करता है; महतः—बड़े से; भयात्—भय से।
रायेगाँ—व्यर्थ।

भावार्थ— इस कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है, बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्म का थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूपी महान् भय से रक्षा कर लेता है।

41. व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।

जो अक़्ल-ए इरादी रहे मुस्तकिल,
तो यकसू हो और पुखता इन्साँ का दिल।
इरादा न हो जिसका सुलझा हुआ,
रहेगा ख्यालों में उलझा हुआ।।

शब्दार्थ— व्यवसायात्मिका—प्रयत्नपरक; बुद्धिः—बुद्धि; एका—एक ही है;

इह—यहाँ; कुरुनन्दन—हे अर्जुन! बहुशाखाः—बहुत शाखाओं वाली; हि—निश्चय से; अनन्ताः बेअन्त; च—और; बुद्धयः—बुद्धियाँ; अव्यवसायिनाम्—निश्चयपूर्वक काम न करने वालों की। अक़्ल-ए इरादी—निश्चयात्मक बुद्धि; मुस्तकिल—सदा; यकसू—एकाग्र; पुख़्ता—दृढ़।

भावार्थ— हे अर्जुन! इस कर्मयोग में निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है; किन्तु अस्थिर विचार वाले विवेकहीन सकाम मनुष्यों की बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदों वाली और अनन्त होती हैं।

42. यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।।

जो वेदों के लफ़्ज़ों से हैं शादमाँ,
वो नादाँ करें बस गुल-अफ़शानियाँ।
उन्हें कर्मकाण्डों से है आग ही
वो कहते हैं सब कुछ यहीं है यहीं।।

शब्दार्थ— याम्—जिसको; इमाम्—इसको; पुष्पिताम्—फूलों के समान; वाचम्—वाणी को; प्रवदन्ति—कहते हैं; अविपश्चितः—अल्पज्ञ; वेदवादरताः—वेद के वाद-विवाद में रत; पार्थ—अर्जुन; अन्यत्—अन्य कुछ; अस्ति—है; इति—यह; वादिनः—बोलने वाले। शादमाँ—अनजान; गुल-अफशानियाँ—सब्जबाग़ियाँ; आगही—जानकारी।

भावार्थ— हे अर्जुन! जो भोगों में तन्मय हो रहे हैं, जो कर्मफल के प्रशंसक वेदवाक्यों मे ही प्रीति रखते हैं, जिनकी बुद्धि में स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है।

43. कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।।

जन्म को बतायें वो कर्मों का फल,
सिखायें ज़र-ओ-ऐश के सौ अमल।
वो खुद काम हैं कामनाओं में मस्त,
वो जन्नत के तालिब हैं जन्नत परस्त।।

शब्दार्थ— कामात्मानः—लालसा में फंसे हुए; स्वर्गपराः—स्वर्ग प्राप्ति के इच्छुक; जन्मकर्मफलप्रदाम्—जन्म रूप कर्मफल को देने वाली;

क्रियाविशेष बहुलाम्—यज्ञ आदि की अनेक क्रियाओं वाली; भोगैश्वर्यगतिम् प्रति—भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये ।

ज़र-ओ ऐश—खाओ पीओ मौज उड़ाओ; सौ अमल—सौ दाओ पेंच; तालिब—इच्छुक; जन्नत परस्त—स्वर्ग की कामना रखने वाले ।

भावार्थ— जो स्वर्ग से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है ऐसा कहने वाले हैं, वे अविवेकीजन इस प्रकार की दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहा करते हैं ।

44. भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।।

फँसे जिनके दिल ऐसे अफ़वाल में,
घिरें ऐश-ओ-दौलत के जंजाल में ।
समाधि नहीं दिल पे काबू नहीं,
कि अक़्ल-ए इरादी ही यक्सू नहीं ।।

शब्दार्थ— भोगैश्वर्यप्रसक्तनाम्—भोग तथा ऐश्वर्य में फँसे हुए; तया—उस वाणी से; अपहृतचेतसाम्—हरे हुए चित्तवाले; व्यवसायात्मिका—प्रयत्नपरक; समाधौ—समाधि में; विधीयते—होती ।

अफ़्वाल—बातों; अक़्ल-ए इरादी—दृढ़ निश्चय; यक्सू—स्थिर ।

भावार्थ— भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये नाना प्रकार की बहुत-सी क्रियाओं का वर्णन करने वाली है, उस वाणी द्वारा जिनका चित हर लिया गया है, जो भोग और ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त हैं; ऐसे पुरुषों की परमात्मा में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती ।

45. त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेमः आत्मवान् ।।

है वेदों में लिक्खे हुए तीन गुन,
तू बाला हो इनसे न रख इनकी धुन ।
रख इज़्दाद का और न हासिल का ग़म,
हो मैहव आत्मा में सदाकत पे जम ।।

शब्दार्थ– त्रैगुण्यविषया–प्रकृति के तीन गुण; वेदा–वेद; निस्त्रैगुण्यः–तीन गुणों से अलग; भव–हो; अर्जुन–हे अर्जुन; निर्द्वन्द्वः–सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से मुक्त; नित्यसत्त्वस्थः–सदा सत्वगुण की वृत्ति में स्थित; निर्योगक्षेमः–लाभ व रक्षा के भावों से युक्त; आत्मवान्–आत्मा में स्थित ।

इज़्दाद–गर्मी-सर्दी आदि; हासिल–योगक्षेम; मैहब–तल्लीन; सदाकत–सत्व में स्थित ।

भावार्थ– वेदों में मुख्यतः प्रकृति के तीन गुणों का वर्णन है । हे अर्जुन ! इन तीनों गुणों से ऊपर उठ । आत्म परयाण बन । सारे द्वन्द्वों, लाभ व सुरक्षा की सारी चिन्ताओं से मुक्त हो । धर्म परायण बन ।

46. यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।

वो इन्साँ जिसे ब्रह्म का ज्ञान है,
उसे कर्म काण्डों पे कब ध्यान है ।
उसे वेद मैहज़ एक तालाब है,
जहाँ सारे आलम में सैलाब है ।।

शब्दार्थ– यावान्–जितना; अर्थः–अर्थ प्रयोजन; उदपाने–जलाशय में; सर्वत–चारों ओर से; सम्प्लुतोदके–पानी की बाढ़ आ जाने पर; तावान्–उतना; सर्वेषु–सब में; वेदेषु–वेदों में; ब्राह्मणस्य–ब्राह्मण के; विजानतः–जानने वाले के ।

मैहज़–केवलमात्र; आलम–संसार; सैलाब–बाढ़ ।

भावार्थ– सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जाने पर अर्थात् बाढ़ आ जाने पर छोटे जलाशय में मनुष्य का उतना प्रयोजन नहीं रहता है, ब्रह्म को तत्त्व से जानने वाले ब्राह्मण के लिये समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है ।

47. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।

तुझे काम करना है ओ मरदेकार,
नहीं उसके फल पर तुझे इख़्तियार ।
किये जा अमल और न ढूंढ उसका फल,
अमल कर, अमल कर न हो बे-अमल ।।

शब्दार्थ– कर्मणि–कर्म में; एव–ही; अधिकारः–अधिकार; ते–तेरा; मा–मत; फलेषु–कर्म-फलों में; कदाचन–कभी; मा–मत; कर्मफलहेतुः–कर्म फल की इच्छा रखने वाला; भूः–हो; मा–मत; ते–तेरा; संग–प्रीति; अस्तु–हो; अकर्मणि–कर्म न करने में ।

मर्द-ए कार–ऐ कर्मवीर; बे-अमल–कर्मरहित ।

भावार्थ– तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं । इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो ।

48. योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

रख अर्जुन तू दिल योग में उस्तवार,
तू कर बे-लगावट अमल इख़्त्यार ।
न जीते की शादी न हारे का सोग,
कि दिल के तवाज़न का है नाम योग ।।

शब्दार्थ– योगस्थः–कर्म-योग में स्थित होकर; कुरु–कर; कर्माणि–कर्मों को; संगम्–प्रीति को; त्यक्त्वा–छोड़कर; धनंजय–हे अर्जुन! सिद्धसिद्ध्योः–सिद्धि तथा असिद्धि दोनों में; समः–समान; भूत्वा–होकर; समत्वम्–सम-भाव; योगः–योग; उच्यते–कहा जाता है ।

उस्तवार–स्थित; बे-लगावट–आसक्ति रहित; तवाज़न–संतुलन ।

भावार्थ– हे अर्जुन! जय अथवा पराजय की सारी आसक्ति त्याग कर समभाव से अपना काम कर । ऐसी समता योग कहलाती है ।

49. दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।।

सुन अब अक़्ल के योग का हाल सुन,
बहुत पस्त हैं जिससे कर्मों के गुण ।
बना अक़्ल-ए खालिस को तू दस्तगीर,
रहें फल के तालिब ज़लील-ओ हक़ीर ।

शब्दार्थ— दूरेण—अत्यंत; हि—निश्चय से; अवरम्—घटिया; कर्म—कर्मकांड; बुद्धियोगात्—बुद्धि-योग या कर्म-योग से; धनंजय—हे अर्जुन! बुद्धौ—बुद्धि में, शरणम्—शरण को; अन्विच्छ—प्राप्त कर; कृपयाः—दीन; फलहेतवः—फल के हेतु।

पस्त—निकृष्ट; अक़्ल-ए खालिसी—विवेकिनी बुद्धि; दस्तगीर—गाइड; ज़लील-ओ हक़ीर—बहुत दुःखी।

भावार्थ— इस समत्वरूप बुद्धियोग से सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणी का है। इसलिये हे अर्जुन! तू समबुद्धि में ही रक्षा का उपाय ढूँढ अर्थात् बुद्धियोग का ही आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल के हेतु बनने वाले अत्यन्त दीन हैं।

50. बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

लगी है जिसे अक़्ल-ए ख़ालिस की धुन,
यहीं छोड़ देगा वो सब पाप पुन।।
कमा योग तन-मन में बस जाय योग,
अमल में हुनर हो तो कहलाये योग।।

शब्दार्थ— बुद्धियुक्तः—बुद्धियोग; जहाति—छोड़ देता है; इह—यहीं; उभे—दोनों; सुकृतदुष्कृते—अच्छे कर्म और बुरे कर्म; तस्मात्—अतः; योगाय—कर्मयोग के लिये; युज्यस्व—जुट जा; योगः—योग; कर्मसु—कर्मों में; कौशलम्—कुशलता।

अमल में हुनर—कर्म में कौशलता।

भावार्थ— समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों कर्मों की आसक्ति इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योग में लग जा; सब कर्मों को कुशलता से करने का नाम योग है।

51. कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।

कि सरशार-ए दानिश मुनि बा-अमल,
करें सब अमल छोड़कर उनके फल।
जनम के वो बन्धन से आज़ाद हैं,
सरूर-ए-अबद पा के दिल-शाद हैं।।

शब्दार्थ— कर्मजम्—कर्मों से प्राप्त होने वाले; बुद्धियुक्ताः—बुद्धियोग से युक्त; हि—निश्चय से; फलम्—फल को; त्यक्त्वा—त्याग कर; मनीषिणः—ज्ञानी लोग; जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः—जन्म के बन्धन से छूटे हुए; पदम्—स्थान को; गच्छन्ति—जाते हैं; अनामयम्—दुःखहीन ।

सरशाए-ए-दानिश—स्थिर बुद्धि वाला; बाअमल—कर्मठ; सरूर-ए अबद—स्थायी शांति; शाद—शांत ।

भावार्थ— क्योंकि समबुद्धि से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूप बन्धन से मुक्त हो निर्विकार परमपद मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं; जो सारे दुःख से परे हैं ।

52. यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।

जो हो अक़्ल आज़ाद जंजाल से,
निकल जाये तू मोह के जाल से ।
सुनी बात से भी करे एहतराज़,
रहे अनसुनी से भी तू बे-न्याज़ ।।

शब्दार्थ— यदा—जब; ते—तेरी; मोहकलिलम्—मोह रूप दलदल को; व्यतितरिष्यति—तर जाएगी; तदा—तब; गन्तासि—चला जाएगा; निर्वेदम्—उदासीनता को, श्रोतव्यस्य—जो-कुछ सुनना है; श्रुतस्य—जो-कुछ सुना है; च—और ।

एहतराज—अरुचिकर; बे-न्याज—तटस्थ ।

भावार्थ— जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को भली-भाँति पार कर जायेगी, उस समय तू सुने हुए और सुनने में आने वाले इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा ।

53. श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।

परेशां ख़्याली से पाये सकूँ,
मुकद्दस ज़ईफ़ों का ग़म हो फ़सूँ,
समाधि से कायम हो दिल ज़ात में,
तो हासिल हो फिर योग हर बात में ।।

शब्दार्थ– श्रुतिविप्रतिपन्ना–श्रुतियों से विक्षिप्त; ते–तेरी; यदा–जब; स्थास्यति–स्थिर हो जाएगी; निश्चला–निश्चल; समाधौ–समाधि में; अचला–टिकी हुई; तदा–तब; योगम्–योग को; अवाप्स्यसि–प्राप्त करेगा ।

परेशां ख्याली–भटकी हुई बुद्धि; मुकद्दस–पवित्र; ज़ईफ़ों–सिद्धान्त; फसूं–दाओं-पेंच से रहित; ज़ात–आत्मा; हासिल–प्राप्त ।

भावार्थ– भाँति-भाँति के वचनों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अचल और स्थिर समाधि में ठहर जायेगी, तब तू योग को प्राप्त हो जायेगा ।

54. स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।

फिर अर्जुन ने पूछा यह भगवान् से,
समाधि में दिल को जो कायम करे ।
है उस कायम-उल अक़्ल का क्या चलन,
हो क्या बूद-ओ बाश उसका कैसा सुखन?

शब्दार्थ– स्थितप्रज्ञस्य–स्थितप्रज्ञ की; का–क्या; भाषा–परिभाषा; समाधिस्थस्य–समाधि में स्थित की; केशव–श्रीकृष्ण; स्थितधीः–स्थिर बुद्धि; किम्–किस ढंग से; प्रभाषेत–बोले; किम्–किस ढंग से; आसीत्–बैठे; व्रजेत–चले; किम्–किस ढंग से ।

कायम-उल-अक़्ल–स्थिरप्रज्ञ; बूद-ओ बाश–रहती-सहती ।

भावार्थ– हे कृष्ण! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?

55. प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।

तो भगवान् बोले जो हो महब-ए ज़ात,
जो मन से करे दूर सब ख्वाइशात ।
रहे जिसका दिल रूह से मुतमैयन,
उसी फ़र्द को कायम-उल अक्ल गिन ।।

शब्दार्थ– प्रजहाति–छोड़ देता है; यदा–जब; कामान्–कामनाओं को; सर्वान्–सबको; पार्थ–हे अर्जुन! मनोगतान्–मन की गति करने वालों को; आत्मनि–अपने-आप में; एव–ही; आत्मना–अपने-आप में; तुष्ट–संतुष्ट; स्थितप्रज्ञः–स्थिर बुद्धि वाला; तदा–तब; उच्यते–कहलाता है।

महव-ए ज़ात–आत्मा में तल्लीन; मुतमैयन–संतुष्ट; फर्द–मानव; कायम-उल-अक्ल–स्थिर बुद्धि।

भावार्थ– जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली-भाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

56. दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

जो सुख से सुखी हो न दुःख से दुःखी,
न ख़ौफ़ उसको आये न गुस्सा कभी।
न जज़्बों के जंजाल में आये वो,
मुनि कायम-उल अक्ल कहलाये वो।।

शब्दार्थ– दुःखेषु–दुःखों में; अनुद्विग्नमनाः–बेचैन मन का न होने वाला; सुखेषु–सुखों में; विगतस्पृहः–लालसारहित; वीतरागभयक्रोधः–राग, भय और क्रोध से रहित; स्थितधीः–स्थिर बुद्धि वाला; उच्यते–कहलाता है।

जज़्बों–सांसारिक विषयों।

भावार्थ– दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

57. यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

बुराई जो पहुँचे तो नालाँ न हो,
भलाई जो पाये तो शादाँ न हो।
किसी से तअल्लुक न उसको लगाओ,
यही कायम-उल अक्ल का है सुभाओ।।

शब्दार्थ– यः–जो; अनभिस्नेहः–बिना स्नेह वाला; तत्-तत्–उस-उस को; प्राप्य–प्राप्त करके; शुभाशुभम्–शुभ तथा अशुभ को; अभिनन्दति–प्रसन्न होता है; द्वेष्टि–अप्रसन्न होना; तस्य–उसकी; प्रज्ञा–बुद्धि; प्रतिष्ठिता– स्थिर हो गई है ।

नालाँ–दुःखी; शादाँ–सुखी; तअल्लुक–संबंध; लगाओ–मोह ।

भावार्थ– जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है ।

58. यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।

ज़रा-सा भी दे कोई कछुवे को छेड़,
तो लेता है फ़ौरन सब आज़ा सुकेड़ ।
सुकेड़े जो हर शय से अपने हवास,
वो है कायम-उल-अक़्ल ऐ हक-शनास ।।

शब्दार्थ– यदा–जब; संहरते–खींच लेता है; च–और; अयम्–यह; कूर्मः–कछुआ; अंगानि–अंगों को; इव–जैसे; सर्वशः–सब ओर से; इन्द्रियाणि–इन्द्रियों को; इन्द्रियार्थेभ्यः–इन्द्रियों के विषयों से; तस्य–उसकी; प्रज्ञा–बुद्धिः प्रतिष्ठिता–स्थिर हो गई है ।

आज़ा–अंग; हर शय–प्रत्येक सांसारिक विषय से; हवास–इन्द्रियाँ; हक-शनास–यथार्थता को जानने वाला ।

भावार्थ– जैसे कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब समझो उसकी बुद्धि स्थिर हो गई है ।

59. विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।

करे नेमत तर्क परहेज़गार,
मगर शौक-ए-लज़्ज़त से हो बे-करार ।
उसे तर्क-ए लज़्ज़त की लज़्ज़त मिले,
जिसे दीद-ए बारी की दौलत मिले ।

शब्दार्थ– विषयाः–विषय; विनिवर्तन्ते–निवृत्त हो जाते हैं; निराहारस्य–विषयों का आहार न ग्रहण करने वाले के; देहिनः–मनुष्य के; रसवर्जम्–लालसा को छोड़कर; रसः–राग; अपि–भी; अस्य–इसका; परम्–पर ब्रह्म को; दृष्ट्वा–देखकर; निवर्तते–निवृत्त हो जाता है।

नेमतें–विषय; तर्क–त्याग; परहेज़गार–विरागी, शौक-ए लज़्ज़त–विषयों का रस; बे-करार–व्याकुल; तर्क-ए लज़्ज़त–त्याग का रस, दीद-ए बारी–प्रभुप्राप्ति।

भावार्थ– इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।

60. यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।

खिरदमन्द के भी हवास-ओ ख़्याल,
जो तेज़ी में आ जायें कुन्ती के लाल।
तो मन को भी वो छीन ले जायेंगे,
करें लाख कोशिश न हाथ आयेंगे।।

शब्दार्थ– यततः–यत्न करते हुए के; हि–निश्चय से; अपि–भी; कौन्तेय–अर्जुन; पुरुषस्य–पुरुष के; विपश्चितः– विवेकशील के; इन्द्रियाणि–इन्द्रियाँ; प्रमाथीनि–मथ डालने वाली; हरन्ति–खींच लेती हैं; प्रसभम्–बलपूर्वक।

खिरदमन्द–बुद्धिमान; हवास-ओ ख्याल–इन्द्रियां और मन।

भावार्थ– हे अर्जुन! इन्द्रियाँ इतनी प्रबल व वेगवान हैं कि वे उस विवेकी पुरुष के मन को भी बलपूर्वक हर लेती हैं चाहे उन्हें वश में करने का कितना भी प्रयत्न क्यों न करें।

61. तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

हवास अपने रोक और लगा मुझ में दिल,
तू सरशार हो योग में मुतसइल।
रहें ज़ब्त में जिसके होश-ओ हवास,
वो है कायम-उल अक़्ल ऐ हक शनास।।

शब्दार्थ– तानि–उन; सर्वाणि–सबको; संयम्य–वश में करके; युक्तः जुड़कर; आसीत्–बैठे; मत्परः–मुझमें रम कर; वशे–वश में; हि–निश्चय से; यस्य–जिसके; इन्द्रियाणि–इन्द्रियाँ; तस्य–उसकी; प्रज्ञा–बुद्धि; प्रतिष्ठिता–स्थिर है।

सरशार–युक्त; मुतसइल–निरन्तर; ज़ब्त–वश; होश-ओ हवास–बुद्धि और इन्द्रियाँ, शनास–पहचानने वाला।

भावार्थ– सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठें, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसी की स्थिर बुद्धि हो जाती है।

62. **ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।**
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।

लगाये जो महसूस अशिया से मन,
तअल्लुक बढ़े उनसे और हो लगन।
तअल्लुक से ख़्वाइश का हो फिर ज़हूर,
हो ख़्वाइश से गुस्से का दिल में फ़तूर।।

शब्दार्थ– ध्यायतः–ध्यान करने वाले; विषयान्–विषयों को; पुंसः–पुरुष के; संगः–आसक्ति; तेषु–उनमें; उपजायते–हो जाता है; संगात्–संग से; संजायते–पैदा हो जाता है; कामः–कामना; कामात्–कामना से; अभिजायते–पैदा होता है।

ज़हूर–उत्पन्न; फ़तूर–हलचल।

भावार्थ– विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है ।

63. **क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।**
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

हो गुस्से से फिर तीरगी रूनुमा,
असर तीरगी का है सहव-ओ ख़ता ।
इसी सहव से अक्ल हो पायमाल,
जो ज़ायल हुई अक्ल आया ज़वाल ।।

शब्दार्थ– क्रोधात्–क्रोध से; भवति–होता है; सम्मोह–मूढता; सम्मोहात्–मूढ भाव से; स्मृतिविभ्रमः–स्मृति में भ्रम; स्मृतिभ्रंशात्–स्मृति में भ्रम पैदा हो जाने से; बुद्धिनाशः–बुद्धि का नाश; बुद्धिनाशात्–बुद्धि के नष्ट हो जाने से; प्रणश्यति–स्वयं नष्ट हो जाता है ।

तीरगी रूनुमा–सम्मोह; सहव-ओ ख़ता–त्रुटियां व भूलें; सहव–नाश; पायमाल–स्मृतिभ्रंश; ज़ायल–मारी गई; ज़वाल–पतन ।

भावार्थ– क्रोध से मूढ भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से व्यक्ति स्वयं भी नष्ट हो जाता है ।

64. **रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।**
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।

जो करता है महसूस दुनियाँ की सैर,
न उल्फ़त किसी से है जिसको न वैर ।
रहे नफ़्स पर ज़ब्त जिसको मदाम,
वो तस्कीन-ए दिल से रहे शादकाम ।।

शब्दार्थ– रागद्वेषवियुक्तैः–राग-द्वेष से रहित; तु–तो; विषयान्–विषयों को; इन्द्रियैः–इन्द्रियों से; चरन्–भोगता हुआ; आत्मवश्यैः–अपने वश में की हुई से; विधेयात्मा–शिक्षित किया हुआ आत्मा; प्रसादम्–प्रसन्नता को; अधिगच्छति–प्राप्त होता है ।

उल्फ़त—राग; नफ़्स—मन; ज़ब्त—काबू; मदाम—सदा; तस्कीन-ए दिल—प्रसन्न चित्त; शादकाम—शांत ।

भावार्थ— अपने अधीन किये हुए अन्तःकरण वाला साधक अपने वश में की हुई, राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है ।

65. **प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।**
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।

दिल-ए पुरसकूँ में कहाँ आये रंज,
कि दुःख दूर हो जाये मिट जाये रंज ।
जो पैदा हो दिल में सकून-ओ करार,
वही अक़्ल कायम हो और उस्तवार ।।

शब्दार्थ— प्रसादे—चित्त के प्रसन्न होने पर; सर्वदुःखानाम्—सब दुःखों की; हानिः—अभाव; अस्य—इसकी; उपजायते—हो जाती है; प्रसन्नचेतसः—प्रसन्न चित वाले की; हि—निश्चय से; आशु—शीघ्र ही; पर्यवतिष्ठते—स्थिर हो जाती है ।

दिल-ए पुरसकूँ—शांतमन; रंज—दुःख; सकून-ओ करार—शांत अवस्था; कायम—स्थिर ।

भावार्थ— अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है । अस्थिर बुद्धि वाले को सुख शान्ति कहाँ ?

66. **नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।**
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।

न हो दिल पे काबू तो दानिश मुहाल,
न हो दिल पे काबू तो भटकें ख़्याल ।
परेशाँ ख़्याली से आये न सुख,
जिसे सुख न आये सदा उसको दुःख ।।

शब्दार्थ— अस्ति—है; अयुक्तस्य—न जुड़े हुए की; च—और; अयुक्तस्य—न जुड़े हुए की; भावना—भावना; च—और; अभावयतः—भावना रहित; शान्तिः—शान्ति; अशान्तस्य—अशान्त व्यक्ति को; कुतः—कैसे; सुखम्—सुख ।

दानिश—बुद्धि; मुहाल—अस्थिर; भटकें—चंचलता; परेशां ख्याली—विक्षिप्त अवस्था।

भावार्थ— न जीते हुए मन और इन्द्रियों वाले पुरुष में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त व्यक्ति के अन्तःकरण में भावना भी नहीं होती तथा भावनाहीन व्यक्ति को शांति नहीं मिलती। शान्ति के बिना व्यक्ति सुखी कैसे हो सकता है?

67. इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।।

हवास आदमी के भटकते हों गर,
हो इस हिरज़ा-गिरदी का दिल पर असर।
तो दिल अक़्ल को ले चले इस तरह,
कि तूफ़ाँ में किश्ती बहे जिस तरह।।

शब्दार्थ— इन्द्रियाणाम्—इन्द्रियों के; हि—निश्चय से; चरताम्—भटकती हुई; यत्—जो; अनु—पीछे; विधीयते—चलने लगता है; तत्—वह; अस्य—इसकी; हरति—हर लेता है; प्रज्ञाम्—बुद्धि को; नावम्—नौका को; इव—तरह, अम्भसि—जल में।
हिरज़ा गिरदी—भटकन।

भावार्थ— जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु विचलित कर देती है, वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों में से मन जिस इन्द्रिय के साथ रहता है वह व्यक्ति की बुद्धि को विचलित कर देता है।

68. तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

जो इन्साँ हवास अपने रोके रहे,
न महसूस अशिया पे भटका फिरे।
तो सुन ले मेरी बात अर्जुन कवी,
कि है कायम-उल-अक़्ल इन्साँ वही।।

शब्दार्थ— तस्मात्—इसलिये; यस्य—जिसकी; महाबाहो—हे अर्जुन!; निगृहीतानि—दूर खींच ली गई है; सर्वशः—सब प्रकार से; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; इन्द्रियार्थेभ्यः—इन्द्रियों के विषयों से; तस्य—उसकी; प्रज्ञा—बुद्धि; प्रतिष्ठिता—स्थिर है।

महसूस अशिया—इन्द्रियों के विषय; कवी—शूरवीर ।।

भावार्थ— हे अर्जुन! जिस पुरुष की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है ।।

69. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

जिसे रात कहती है दुनियाँ तमाम,
निगाहों में आरफ़ की दिन है मदाम ।
जो दिन एहल-ए आलम के नज़दीक है,
वो आरफ़ की शब है कि तारीक है ।।

शब्दार्थ— या—जो; निशा—रात; सर्वभूतानाम्—सब प्राणियों के लिये; तस्याम्—उसमें; जागर्ति—जागता है; यस्याम्—जिस में; जाग्रति—जागते हैं; भूतानि—प्राणी; सा—वह; निशा—रात्रि; पश्यतः—आँखें खोलकर देखने वाले; मुनेः—मुनि के लिये ।

आरफ़—ब्रह्मज्ञानी; एहल-ए आलम—संसारी; तारीक—अंधकार ।

भावार्थ— सब जीवों के लिये जो रात के समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान् सांसारिक सुख की प्राप्ति में सब जीव जागते हैं, परमात्मा के तत्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात है ।

70. आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।

समुन्दर में ग़ायब हों दरिया हज़ार,
रहेगा वो लबरेज़ और बा-वकार ।
सब अरमाँ हों गुम जिनके सीने में बस,
वूही पायें राहत न एहल-ए हवस ।।

शब्दार्थ— आपूर्यमाणम्—चारों तरफ से भरते जाने वाले; अचलप्रतिष्ठम्—अचल मर्यादा वाले; समुद्रम्—समुद्र को; आपः—जल; प्रविशन्ति—प्रवेश करते हैं; यद्वत्—जिस तरह; तद्वत्—उस तरह; कामाः—कामनाएँ; यम्—जिस को; प्रविशन्ति—प्रवेश करती हैं;

सर्वे—सब; सः—वह; शान्तिम्—शान्ति को; आप्नोति—प्राप्त करता है; कामकामी—इच्छाओं को पूरी करने का इच्छुक ।

लबरेज़—भरा हुआ; बा-वकार—अचल प्रतिष्ठा; एहल-ए हवस—कामकामी ।

भावार्थ— जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले सागर में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही शान्ति को प्राप्त कर सकता है । वह नहीं, जो इच्छाओं को तुष्ट करने की चेष्टा करता है ।

71. विहाय कामान्यः सर्वान्पुमाँश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।

जो इन्साँ करे ख्वाइशें दिल से दूर,
हवस का न हो जिसके दिल में फ़तूर ।
न उसमें ख़ुदी हो न हो मेर-तेर,
सकूँ उसको हासिल हे दिल उसका सेर ।।

शब्दार्थ— विहाय—छोड़कर; कामान्—कामनाओं को; यः—जो; सर्वान्—सब; पुमान्—पुरुष; चरति—विचरता है; निःस्पृह—इच्छा रहित; निर्ममः—ममता से रहित; निरहंकारः—अहंकार से रहित; सः—वह; शान्तिम्—शान्ति को; अविगच्छति—प्राप्त होता है ।

खुदी—अहंकार; मेर-तेर—ममता; सेर—तृप्त ।

भावार्थ— जो व्यक्ति सारी इच्छाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और इच्छारहित रहता है, वही वास्तविक शान्ति को प्राप्त होता है ।

72. एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।

यही है मक़ाम-ए वसाल-ए ख़ुदा,
जहाँ आ के हों सब तुहम्में फ़ना ।
दम-ए-वापसी भी जो यह ज्ञान हो,
तो हासिल उसे ब्रह्म निर्वाण हो ।।

शब्दार्थ– एषा–यह; ब्राह्मी–ब्रह्म में; स्थितिः–स्थित हो जाने की अवस्था है; पार्थ–हे अर्जुन; एनाम्–इस को; प्राप्य–प्राप्त करने पर; विमुह्यति–मोह को प्राप्त होता है; स्थित्वा–रह कर; अस्याम्–इस में; अन्तकाले–अन्तिम काल में; अपि–भी; ब्रह्मनिर्वाणम्–ब्रह्म में लीन होने को; ऋच्छति–प्राप्त करता है ।

मकाम-ए वसाल-ए खुदा–ईश्वर प्राप्ति की अवस्था; तुहम्में फ़ना–अज्ञानता का नाश; दम-ए वापसी–अंतकाल ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है, इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इस ब्राह्मी स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाता है, जिसे मोक्ष प्राप्ति कहते हैं ।